॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

५६



भासनाटकचक्रे

बालचरितम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

पं० श्रीरामजीमिश्रः एम० ए०

(रिसर्चस्कालर, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय)



प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, ई० १९६१

प्राक्कथन

भगवान् कृष्ण का चरित्र स्वयं अपने में पूर्ण एवं रसमय है। "यो यथा मां प्रपद्यन्ते ताँस्तथैव भजाम्यहम्' की समर्थ घोषणा वास्तव में भगवान् कृष्ण ही कर सकते थे क्योंकि शृङ्गारी कवियों के लिए उनका नाम, रूप, लीला और धाम सब रसमय है। वीर-रस के कवियों ने उनके चरित्र में वीर, भयानक, अद्भुत और हास्य के अनुपम एवं पर्याप्त स्थल प्राप्त किये हैं। शान्त एवं करुण रस के समर्थ कवियों के लिये भी कृष्ण का चरित्र पर्याप्त है। महाकवि भास ने उनके वीरता एवं अद्भुत कर्मों से पूर्ण 'बाल-चरित' का ओजस्विनी भाषा में चित्रण किया है।

प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका दो भागों में बांटा जा सकता है। पहला कवि-परिचय, दूसरा ग्रन्थ-परिचय। मूल पुस्तक की हिन्दी और संस्कृत टीकाएँ सामान्य विद्यार्थियों के बुद्धि-वैभव को दृष्टि में रखकर की गई हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ को इस रूप में उपस्थित करने का श्रेय मेरे पूज्य व्याकरणाचार्य पण्डित मङ्गलदत्त जी त्रिपाठी एवं अनुज आयुष्मान् श्याम जी मिश्र को है। पहले की सहायता के बिना इसका परिमार्जन नहीं हो सकता था और दूसरे की सहायता के बिना शुद्ध पाण्डुलिपि इतनी जल्दी तैयार न हो सकती थी। एक की कृपा के लिये उन्हें धन्यवाद और दूसरे की मनोयोग पूर्ण तत्परता के लिये आशीर्वाद है।

डॉ० भोलाशंकर व्यास ने समय-समय पर जिस आत्मीयता से मुझे उपयोगी सुझाव दिये हैं इसके लिये मैं उनके प्रति आभार-नत हूँ। अन्त में मैं उन अनेक विद्वानों को धन्यवाद देता हूँ जिनकी रचनाओं ने मेरा कार्य सुगम किया है। इस कार्य काल में निश्चिंतता पूर्वक काशी-निवासी की सुविधा प्रदान करने के लिये अपने अग्रज पूज्य श्री लालजी मिश्र का आभार प्रदर्शन किस रूप में करूँ समझ नहीं पाता।

रामजी मिश्र

महाकवि भास

संस्कृत वाङ्मय का भण्डार भास ने लालित्यपूर्ण सफल नाटकों से सम्पन्न किया। मानवीय भावनाओं का जैसा सफल चित्रण हमें भास के नाटकों में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। महाकवि अश्वघोष और कालिदास से भास किसी भी क्षेत्र में न्यून नहीं दृष्टिगोचर होते। श्री सुशीलकुमार डे ने तो कहा है कि अश्वघोष के नाटकों को पढ़ने के बाद जब हम कालिदास के नाटकों को पढ़ते हैं तो उसमें काफी ऊँची भावभूमि पर आना पड़ता है, रचना-विधान की दृष्टि से भी पर्याप्त सौष्ठव मिलता है। सहसा इतनी अधिक प्रगति पाकर हमें आश्चर्य होता है, पर जब हम भास की कृतियों का आस्वादन कर लेते हैं तो विकासक्रम हमें बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। अतः हमने महाकवि भास को अश्वघोष और कालिदास के बीच की कड़ी माना है।

भास को साहित्य-जगत् में पुनः प्रतिष्ठित करने का श्रेय महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को है। इन्होंने सन् १९१२ ई० में अनन्तशयन ग्रन्थ-माला (त्रिवेन्द्रम्) से भास के स्वप्नवासवदत्तम् आदि १३ नाटकों का बड़ा ही प्रामाणिक-प्रकाशन कराया। साहित्य-समीक्षकों और सहृदयों के मन में 'प्रियविषये जिज्ञासा' खूब बढ़ी और भास के विषय में सर्वांगीण गवेषणाओं का श्रीगणेश हुआ। ये सब नाटक अपनी रचना-पद्धति, भाषाशैली एवं रसवत्ता की दृष्टि से बेजोड़ हैं, इसे मानने में किसी को भी आपत्ति नहीं, पर सब नाटक एक ही कवि की कृति हैं या नहीं इस पर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इतने बड़े कवि के जन्मकाल की समस्या तो अनेक ऊहापोह के बाद भी अभी सुलझी नहीं।

प्राचीन महाकवियों की भाँति भास ने भी अपनी रचनाओं में अपनी चर्चा नहीं की है। जिस प्रकार कविकुलगुरु कालिदास के विषय में अनेक पाश्चात्त्य और पूर्वीय विद्वानों के परस्पर विरुद्ध मत हैं उसी प्रकार भास के विषय में भी पाये जाते हैं। उन सभी मत-मतान्तरों का मन्थन कर श्री पुशलकर जी ने निम्नलिखित तालिका बनाई है[1]—

१. देखिए—पुशलकर–Bhāsa : A Study पृष्ठ ६१ की टिप्पणी।

भिडे, दीक्षितार, गणपति शास्त्री, हरप्रसाद शास्त्री, खुपेरकर, किरत और टटके	६ठी से ४थी शताब्दी ई० पू०
जागीरदार, कुलकर्णी, शेम्बवनेकर, चौधुरी, ध्रुव एवं जायसवाल	३री शताब्दी ई० पू०
कोनो, लिण्डेन्यू, सरूप, सौली, एवं वेलर	२री शताब्दी ई०
बनर्जी शास्त्री, भण्डारकर, जेकोबी, जौली एवं कीथ	३री शताब्दी ई०
लेस्नी और विण्टरनित्ज़	४थी शताब्दी ई०
शंकर	५वीं या ६ठी शताब्दी ई०
बार्नेट, देवधर, हीरानन्द शास्त्री निरुरकर, पिशराटी और सरस्वती	७वीं शताब्दी ई०
काने और कुन्हनराजा	९वीं शताब्दी ई०
रामावतार शर्मा	१०वीं शताब्दी ई०
रेड्डी शास्त्री	११वीं शताब्दी ई०

उपर्युक्त मतों को तीन भागों में बाँट कर उनकी प्रामाणिकता पर विचार करने में सुविधा होगी। इन्हें यों रखा जा सकता है—

प्रथम मत (चतुर्थ-पंचम शताब्दी ई० पू०)—महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री, दीक्षितार आदि के अनुसार महाकवि भास पाणिनि और कौटिल्य से भी अधिक प्राचीन ठहरते हैं। कौटिल्य ने युद्ध-क्षेत्र में शूरों के उत्साहवर्द्धन के लिए जिन श्लोकों का उद्धरण दिया है उनमें से एक श्लोक भासकृत 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' में उपलब्ध है।[1] भास के 'प्रतिमानाटक' में भी महापण्डित रावण ने स्वयं अपने को बृहस्पति-अर्थशास्त्र का ज्ञाता कहा है।[2] इससे भी यह सिद्ध होता है कि भास के समय में कौटिल्य के प्रसिद्ध अर्थशास्त्र का प्रणयन नहीं हुआ था।

---

१. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥
(अर्थशास्त्र, १०।३ पृ० ३६७–३६८) तथा प्रतिज्ञा ४।२

२. 'भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च॥'
प्रतिमा, अंक ५

पाणिनीय व्याकरण के नियमों की व्यवस्था भास के ग्रन्थों में नहीं पाई जाती। इससे यह सिद्ध होता है कि भास पाणिनि से पूर्ववर्ती अवश्य थे।

विन्सेन्ट ए० स्मिथ के मतानुसार ई० पू० २२० से १९७ तक शूद्रक का शासन था जिसके 'मृच्छकटिक' पर 'दरिद्र चारुदत्त' का स्पष्ट प्रभाव माना जाता है।[1] अतः अपने 'दरिद्र चारुदत्त' की रचना भास ने संभवतः ई० पू० पाँचवीं या चौथी शताब्दी में की होगी।

भास के ऐतिहासिक नाटकों में जिन तीन राजाओं की कथा का आश्रय लिया गया है उनमें १. कौशाम्बी के राजा उदयन, २. उज्जैन के राजा प्रद्योत और ३. मगध के राजा दर्शक के नाम उल्लेख्य हैं और इनका शासन-काल छठी शताब्दी ई० पू० के बाद नहीं माना जा सकता।[2] इसके भी पूर्व रामायण और महाभारत की रचना हुई होगी।

महाकवि ने जिस नागवन, वेणुवन, राजगृह और पाटलिपुत्र का उल्लेख किया है इन सबने बुद्ध के समय में ही प्रसिद्धि प्राप्त की होगी। अतः कवि का समय बुद्ध के बाद ही माना जा सकता है। इससे डा० गणपति शास्त्री की यह मान्यता खण्डित होती है कि भास बुद्ध-पूर्व स्थित थे। इनके नाटकों में जिस समाज का चित्रण है वह अनेक प्रमाणों से भास को एक निश्चित समय में स्थित सिद्ध करता है। श्री ए० डी० पुशलकर ने सामाजिक स्थिति के विस्तृत विवेचन के द्वारा भास का समय ई० पू० पाँचवीं या चौथी शताब्दी निश्चित किया है,[3] जिसमें मुझे भी पर्याप्त तथ्य मिलता है।

द्वितीय मत (ईसा की द्वितीय-तृतीय शताब्दी)—डा० कीथ के अनुसार भास की अन्तिम तिथि-सीमा ३५० ई० हो सकती है क्योंकि कालिदास ने इसके पश्चात् ४थी शताब्दी में इनके यश का वर्णन किया है अर्थात् ये तब तक प्रथित-यश हो चुके थे।[4] अश्वघोष ने इनकी कहीं चर्चा नहीं की है और न इनका कोई

---

१. देखिए—पुशलकर–Bhāsa : A Study, अध्याय ६।

२. देखिए विन्सेन्ट स्मिथ कृत 'Early History of India' पृ० ३८, ३९, ५१।

३. देखिए ए० डी० पुशलकर कृत 'Bhāsa : A Study' पृ० ६७–६८।

४. "It is difficult to arrive at any precipe determination of Bhāsa's date. That Kalidas knew his fame as firmly established is clear, and, if we may fairly safely date Kalidas about A. D. 400, this

प्रभाव ही उन पर दृष्टिगत होता है पर इनके 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' में 'बुद्धचरित' के एक श्लोक की स्पष्ट छाया मिलती है[1]। इसलिए यह सिद्ध होता है कि भास अधिक से अधिक द्वितीय शताब्दी (अश्वघोष) के बाद और कम से कम पाँचवीं शताब्दी (कालिदास) से पूर्व अवश्य रहे होंगे। अब भास कालिदास के अधिक निकट हैं या अश्वघोष के, यह एक प्रश्न है, जिसके उत्तर में डा० कीथ ने इन्हें कालिदास के अधिक निकट माना है।[2]

भास महाभारत या कृष्ण से सम्बद्ध कथावस्तुओं के निर्वाह में जैसे तल्लीन और सफल हुए हैं वैसे अन्यत्र नहीं, संभवतः क्षत्रप राजाओं के आश्रित होने से ही उन्होंने यह प्रभाव ग्रहण किया हो जो कि परम कृष्ण-भक्त थे। इन क्षत्रपों का राज्य-काल स्टेन कोनो के मतानुसार दूसरी शताब्दी ईस्वी ठहरती है और भास इसी समय वर्तमान माने जाते हैं।

तृतीय मत (सातवीं शताब्दी)—भास के नाटकों का समय सातवीं शताब्दी ईस्वी मानने वालों में डा० बार्नेट प्रमुख हैं। बार्नेट ने 'नाटक-चक्र' के कर्त्ता महाकवि भास नहीं हैं अपितु कोई केरलीय कवि है जो ईसा की सातवीं शताब्दी में वर्तमान था ऐसा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त भास के भरतवाक्यों में जिस राजसिंह का उल्लेख है उसे वे केरल का कोई राजा मानते हैं पर स्टेन कोनो ने इसे क्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम, ध्रुव ने शुंग पुष्यमित्र तथा दूसरों ने अन्य किसी राजा का विशेषण माना है। पुशलकर ने इसे विन्ध्य और हिमवत् तक फैले हुए उत्तरी भारत पर एकच्छत्र राज्य करने वाले प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त को मानकर अपने मत की पुष्टि की है।[3]

सिद्धान्त मत—अन्ततोगत्वा भास के नाटकों का अन्तःपरीक्षण एवं बहिःपरीक्षण करके यह सिद्ध किया जा सकता है कि कवि मौर्यकाल के पूर्व

---

gives us a period of not later than A. D. 350 for Bhāsa."
(The Sanskrit drama, Page 93. 1954.)

१. दे० बुद्धचरित सर्ग १३ श्लोक ६०।

२. देखिए 'The Sanskrit drama'–A. B. Keith p. 95.

३. देखिए पुशलकर—'Bhāsa : A Study' पृ० ६९।

वर्तमान था क्योंकि इन्होंने भी कहीं अपनी रचनाओं में अपना नामोल्लेख नहीं किया है। भरतवाक्यों को दृष्टि में रखते हुए भास की स्थिति उग्रसेन महापद्मनन्द (चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्तराधिकारी) के समय में मानी जा सकती है।

जैसे कालिदास, शूद्रक और कौटिल्य का समय असंदिग्ध है वैसे ही भास को अश्वघोष के पहले रखा जाय या पश्चात् यह भी एक समस्या है। भास को सब प्रकार से मौर्यकाल के पूर्व सिद्ध किया जाता है तथा कौटिल्य (४थी शताब्दी ई० पू०) के पश्चात् इन्हें किसी प्रकार नहीं लाया जा सकता।[१]

कर्तृत्व—महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित 'नाटक-चक्र' के सम्पूर्ण नाटकों के कर्त्ता महाकवि भास ही हैं या कुछ अन्य कवि की भी कृतियाँ इसमें जोड़ी गई हैं[२] यह अब तक निश्चित नहीं हो सका है। अधिकांश विद्वान् अब डा० गणपति शास्त्री से सहमत हो गये हैं, जैसे डा० कीथ, डा० थामस, डा० सरूप, प्रो० परांजपे और प्रो० देवधर आदि। प्रो० जागीरदार ने स्वप्नवासवदत्तम् , प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् एवं पंचरात्र को भास की कृति मानकर शेष नाटकों को दो भागों में विभक्त करके भिन्न-भिन्न काल की रचनाएँ मानी हैं। डा० विंटरनित्ज़ और डा० सुक्थनकर ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' को भास की कृति मानी है, शेष के बारे में कोई निश्चित मत नहीं व्यक्त किया है।

धर्म—प्रो० विंटरनित्ज़ ने इनके नाटकों को ब्राह्मण-धर्म का पोषक माना है, क्योंकि भास के नाटकों में ब्राह्मणों के प्रति बड़ी श्रद्धा दिखाई गई है।[३] इन्हीं प्रमाणों के आधार पर डा० व्यास ने अपना मत व्यक्त करते हुए बतलाया है कि भास के समय तक ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान हो चुका था।[४]

इन नाटकों के कर्त्ता के प्रमाणस्वरूप हमें इनके अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य पर विचार करना आवश्यक है।

---

१. देखिए पुशलकर–'Bhāsa : A Study' पृ० ७९–८१।

२. इस विषय में वार्नेट का मत पृष्ठ ४ के 'तृतीय मत' में देखिये।

३. 'द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्' मध्य० १।९, 'ब्राह्मणवचनमिति न मयातिक्रान्तपूर्वम्' कर्णभारम् १।२३, बालचरित २।११ आदि।

४. डा० भोलाशंकर व्यास : 'संस्कृत कवि दर्शन' पृ० २३०।

अन्तःसाक्ष्य (रचना-विधान में साम्य)—

१. नांदीपाठ के स्थल पर मंगलपाठ का विधान तथा सूत्रधार के द्वारा नाटकों का प्रारम्भ ('नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः')।

२. 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' का सर्वत्र प्रयोग।

३. प्ररोचना का अभाव।

४. तेरह नाटकों में से पाँच नाटकों के प्रथम श्लोकों में मुद्रालंकार (देवता की स्तुति के साथ-साथ पात्रों का भी नामोल्लेख तथा कथानक की ओर भी हल्का संकेत) पाया जाता है।

५. भरतवाक्य में 'राजसिंह' का नामोल्लेख।[1] (केवल चारुदत्त और दूतघटोत्कच में भरतवाक्य का विधान नहीं है।)

६. सब नाटकों की भूमिका अल्प तथा प्रारम्भिक वाक्य एक से हैं।[2] (केवल 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्', 'चारुदत्त', 'अविमारक' और 'प्रतिमा' में कुछ भेद है।)

७. कंचुकी और प्रतिहारी (बादरायण और विजया) का नाम अनेक नाटकों में दुहराया गया है।

८. अनेक नाटकों में (नाटकीय व्यंग्य) 'पताकास्थान' का प्रयोग।

९. कई वाक्यों का समान रूप से अनेक नाटकों में प्रयोग।

१०. नाटकों की संस्कृत का विशुद्ध-पाणिनीय-व्याकरण-सम्मत न होना।

११. भरत-प्रतिपादित नाट्यशास्त्रीय विधि-निषेधों का उल्लंघन इनके प्रायः सभी नाटकों में पाया जाता है, जैसे (क) दशरथ की मृत्यु 'प्रतिमा' और बालि की 'अभिषेक' में तथा दुर्योधन की मृत्यु 'ऊरुभंग' में प्रदर्शित है। (ख) चाणूर, मुष्टिक और कंस का वध। (ग) कृष्ण और अरिष्ट के घोर युद्ध का दृश्य 'बालचरित' में। (घ) क्रीडा और शयन का विधान 'स्वप्नवासवदत्तम्' में। (ङ) दूर से जोर से पुकारने का वर्णन 'पंचरात्र' और 'मध्यमव्यायोग' में।

१२. कथानकों का साम्य।

---

१. 'इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥'

२. 'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग पश्यामि।'

१३. युद्ध की सूचना इन्होंने भटों, ब्राह्मणों आदि से अधिकांश नाटकों में दिलाई है।

१४. किसी उच्च पदाधिकारी जैसे राजा, राजकुमार या मन्त्री के आगमन की सूचना 'उस्सरह-उस्सरह। अय्या! उस्सरह' आदि के द्वारा दी गई है। स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, प्रतिमा आदि में इसके पर्याप्त उदाहरण हैं।

१५. किसी विशिष्ट घटना की सूचना के लिए 'निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय' इत्यादि का विधान पंचरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में किया गया है।

१६. एक की मुख-मुद्रा को ही देखकर उसके आन्तरिक भावों का परिज्ञान इनके एकाधिक नाटकों—जैसे प्रतिमा, अविमारक, अभिषेक आदि—में कराया गया है।

भावों में साम्य—भावों की एकता तो प्रत्येक नाटक में पाई जाती है। कुछ विशेष भावसाम्य का नीचे उल्लेख किया जाता है :—

१. कवि ने वीर के स्वाभाविक शस्त्र उसके हाथों को ही सिद्ध किया है जिसके उदाहरण बालचरित, मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, अविमारक आदि में पाए जाते हैं।

२. नारद की अवतारणा कलहप्रिय और स्वरसाधक के रूप में सर्वत्र की गई है।[1]

३. अर्जुन की वीरता का वर्णन दूतवाक्य (श्लो० ३२–३३), दूतघटोत्कच (श्लो० २२) और ऊरुभंग (श्लो० १४) में किया गया है।

४. राजाओं का शरीर से मरकर भी यशःशरीर से चिरकाल तक जीवित रहने का विचार 'नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते' (पञ्चरात्र श्लो० १, २३) तथा 'हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते' (कर्ण० श्लो० १७) में वर्णित है।

५. लक्ष्मी केवल साहसी के पास रहती है और संतोष नहीं धारण करती। ऐसा वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

---

१. तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके। (अविमारक ४।२)
तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामिम। (बाल० १।४)

अन्त में कतिपय अन्य साम्यों को भी परिगणित करते हुए यह सिद्ध किया जाता है कि अन्तःसाक्ष्य के आधार पर तेरहों नाटक एक ही कवि की प्रतिभा से प्रसूत हैं—

१. पताकास्थानकों और नाटकीय व्यंग्यों में काफी समता।

२. समान नाटकीय स्थितियाँ।

३. समान नाटकीय दृश्य।

४. समान अप्रस्तुत विधान।

५. समान वाक्यविन्यास और कथोपकथन।[१]

६. समान छन्द एवं अलंकारविधान।

७. समान नाटकीय पात्रों के नाम।

८. समान सामाजिक व्यवस्था का चित्रण।[२]

बहिःसाक्ष्य—अनेक आचार्यों ने इनके नाटकों के उल्लेख और गद्यांशों या पद्यांशों के उद्धरण अपने ग्रन्थों में दिए हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि ये नाटक महाकविभासरचित ही हैं। यहाँ कतिपय आचार्यों एवं कवियों का साक्ष्य दिया जाता है—

१. आचार्य अभिनवगुप्तपाद (१०वीं शती) ने नाट्यशास्त्र पर टीका करते हुए क्रीडा के उदाहरण में स्वप्नवासवदत्तम् का उल्लेख किया है—

'क्वचित् क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।'

२. भोजदेव (११वीं शती) के 'श्रृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।'...आदि, का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

३. शारदातनय (१२वीं शती) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक की व्याख्या करते हुए पूरा स्वप्नवासवदत्तम् का कथानक उद्धृत किया है।

४. सर्वानन्द (१२वीं शती) ने 'अमरकोशटीकासर्वस्व' में श्रृङ्गार के

---

१. देखिए डा० सुकथन्कर का (भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के १९२३वें वार्षिक विवरण के परिशिष्टांक में प्रकाशित) 'Studies in Bhāsa, iv' में 'Recurrence and parallelisms' की सूची।

२. देखिए—पुशलकर 'Bhāsa : A study' पृ० ५-२१।

भेद करते हुए धर्म, अर्थ और काम की गणना की है। इसी में अर्थ के उदाहरण-स्वरूप उदयन और वासवदत्ता के विवाह का वर्णन किया है।

५. रामचन्द्र और गुणचन्द्र (१२वीं शती का उत्तरार्द्ध) के 'नाट्यदर्पण' में उद्धृत—'यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्स-राजः'...आदि से स्वप्नवासवदत्तम् का भासकृत होना स्पष्ट सिद्ध है।

६. राजशेखर ने सूक्तिमुक्तावली में स्पष्ट ही घोषित किया है—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोभून्न पावकः ॥

इस प्रकार राजशेखर ने पूरे नाटकचक्र में से स्वप्नवासवदत्तम् को तो अग्निपरीक्षा के द्वारा भी भासकृत सिद्ध किया है।

७. बाणभट्ट द्वारा उल्लिखित विशेषताओं को कसौटी मानकर भास के नाटकों की यदि परीक्षा की जाय तो बड़ी सरलता से नाटकचक्र के नाटकों का रचयिता भास घोषित किया जा सकता है।[1]

८. वाक्पतिराज (८वीं शती) ने गउडवहो (५, ८००) में भास को 'अग्निमित्र' कहा है। इस विशेषण को दृष्टिपथ में रखकर डा० विंटरनित्ज, डा० बनर्जी शास्त्री और प्रो० घटक आदि ने भास के नाटकों को प्रमाणित सिद्ध किया है।

९. जयदेव (१२वीं ई० शती) ने प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में भास के काव्य की मुख्य विशेषता हास मानी है।[2] इसके उदाहरण 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, प्रतिमा और मध्यमव्यायोग में पाए जाते हैं।

१०. दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में भास के काव्यगुणों का वर्णन करते हुए बताया है कि—(१) मुख-प्रतिमुख सन्धियाँ इनके काव्यों में स्पष्ट लक्षित

---

१. विशेष देखिए—पुशलकर–Bhāsa A Study, पृ० ३७–४२

२. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
....
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ (प्रस्तावना, प्रसन्नराघव)

होती हैं तथा (२) अनेक वृत्तियों के द्वारा इन्होंने अपने काव्य में विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति की है।[1]

इस प्रकार बाह्य साक्ष्यों में बाण, वाक्पति, जयदेव और दण्डी के द्वारा निर्दिष्ट विशेषताओं पर ध्यान देने से यह निश्चित हो जाता है कि त्रिवेन्द्रम् में सम्पादित भास-नाटकचक्र के सभी नाटक भास की प्रामाणिक कृतियाँ हैं।

भास के तेरह नाटकों को कथावस्तु के आधार पर यों बाँट सकते हैं—

१. **उदयन-कथा**—इन ऐतिहासिक नाटकों के प्रणयन में कवि को गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से पर्याप्त सहायता मिली होगी ऐसी डा० कीथ की मान्यता है।[2] पर भास के नाटकों में वर्णित घटनाएँ अधिक सत्य और गम्भीर हैं जब कि कथासरित्सागर आदि में केवल सामान्य उल्लेख मात्र है। इसलिए उदयन की कथाओं के लिए भास पर अधिक विश्वास किया जाता है अपेक्षाकृत उक्त दो ग्रन्थों के।[3]

२. **महाभारत-कथा**—महाकवि भास ने महाभारत के कथानकसूत्रों को लेकर मनोरम कल्पना का उसमें सम्मिश्रण करके उसे नाटकीय परिधान दिया है। कई नाटकीय परिस्थितियाँ कवि की मौलिक प्रतिभा का प्रतीक हैं। इन्होंने कई नाटकों के पात्रों के चरित्र भी अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार परिवर्तित कर लिए हैं जैसे दुर्योधन, कर्ण, हिडिम्बा, घटोत्कच आदि के।

३. **कृष्ण-कथा**—कृष्णकथा पर आधारित 'बालचरित' का मूल स्रोत डा० स्वरूप और डा० ध्रुव ने हरिवंशपुराण को माना है पर उसे मानने पर भास का समय ४थी शती ईस्वी मानना होगा जो कि उचित नहीं, अतः डा० वेबर का ही मत ग्राह्य मालूम होता है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि इस

---

१. सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥ ११ ॥

२. देखिए—कीथ-कृत संस्कृत ड्रामा, पृ० १०० ।

३. 'Bhasa' treats the incident in a more realistic and serious fashion than does the light-hearted account of the Kathasaritsagar and herein he is probably more faithful to the Udayana legends.'

J. A. O. S. 43 page 169.

नाटक में कृष्ण का आरम्भिक काल का रूप चित्रित है। डा० कीथ ने विष्णु-पुराण और भागवत पुराण से भी पूर्व बालचरित की रचना मानी है।

४. राम-कथा—प्रतिमा की कथावस्तु का मूल आधार वाल्मीकीय रामायण के द्वितीय-तृतीय स्कंध हैं जिनसे कवि ने कोरा कथानक लिया है। उसकी साज-सज्जा में कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का विनियोग किया है। इनके चरित्र रामायण की अपेक्षा अधिक उदात्त और भावोद्बोधक हैं। अभिषेक नाटक के लिए कवि ने किष्किन्धा, सुन्दर और युद्ध काण्डों से सामग्री-संचयन किया है।

५. लोक-कथा (मौलिक कल्पना)—चारुदत्त के लिए किसी निश्चित स्रोत का पता नहीं चलता। एक वेश्या का निर्धन वणिक्प्रेम तो लोक-कथा के रूप में बहुत समय से प्रचलित था। वैसे कवि की मौलिक कल्पना भी हो सकती है। यों तो जातक की 'सुन्दरी-कथा' को संभावित स्रोत माना जाता है और इसकी बहुत कुछ संभावना भी है। डा० स्वरूप की निश्चित धारणा है कि अविमारक की कथा कवि-कल्पना-प्रसूत है। डा० ध्रुव इसे लोकगीतों पर आधृत मानते हैं।

भासनाटकचक्र के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

१. स्वप्नवासवदत्तम्—इस नाटक में ६ अङ्क हैं। इसमें स्वप्न को यथार्थ में परिणत करके कवि ने सफल प्रेम का मनोरम चित्रण किया है। मंत्री यौगन्धरायण अपने बुद्धि-वैभव के बल पर उदयन के अपहृत राज्य को पुनः प्राप्त कराता है। वह 'वासवदत्ता अग्नि में जल गई' ऐसा प्रवाद फैला कर पद्मावती से विवाह कराता है जिससे उदयन पुनः राज्य प्राप्त करते हैं।

२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह नाटक ४ अंकों का है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के पूर्व की कथा इसमें निबद्ध है। मंत्री यौगन्धरायण के प्रयत्न से वत्सराज उदयन और अवन्तिकुमारी वासवदत्ता के रहस्यमय (गुप्त) परिणय और मंत्री के कौशल तथा दृढ़ प्रतिज्ञा का रोमांचक वर्णन है।

३. ऊरुभंग—इस एकांकी में भीम के प्रतिज्ञा-निर्वाह की दृढ़ता का भयानक (रौद्र) एवं वीररसपूर्ण वर्णन है। भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध

में दुर्योधन की कारुणिक मृत्यु का वर्णन है। संस्कृत नाट्य-परम्परा में एक मात्र यही दुःखान्त नाटक है।

४. **दूतवाक्य**—यह एक अङ्क का व्यायोग है। भास ने इसमें सर्वथा विरुद्ध प्रकृति के दो पात्रों को चुना है, एक जहाँ अपनी उदारता के कारण ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति का है वहाँ दूसरा ईर्ष्या की ज्वाला में जलता हुआ निम्नगामी मनोवृत्ति का प्रतीक। महाभारत-युद्ध के विनाशकारी परिणाम से सबकी रक्षा के लिए पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्ण का सन्धि-प्रस्ताव लेकर जाना पर दुर्योधन की सभा से विफल हो कर लौटना इसमें वर्णित है। कृष्ण और दुर्योधन के कथोपकथन में नाटकीयता का चरम निदर्शन है।

५. **पंचरात्र**—तीन अङ्कों के इस समवकार में तथ्य (फैक्ट्स) और कथ्य (फिक्शन) का सम्यक् सम्मिलन हुआ है। विराट पर्व के कथासूत्र को लेकर कवि ने इस सुन्दर नाटक का कल्पनापूर्ण निर्माण किया है। द्रोणाचार्य को दक्षिणा-रूप में पाण्डवों को आधा राज्य देने का वचन और अज्ञातवास की स्थिति में पाँच रात्रि के भीतर ही पाण्डवों के मिलने पर दुर्योधन का आधा राज्य दे देना ही इसकी कथावस्तु है।

६. **दूतघटोत्कच**—अभिमन्यु-वध के पश्चात् अर्जुन के प्रतिज्ञा करने पर श्रीकृष्ण का घटोत्कच को धृतराष्ट्र के पास विनाश की सूचना देने के लिए भेजना और अन्त में भयंकर युद्ध। उद्धत वीर घटोत्कच और दुर्योधनादि का वार्तालाप बड़ा सफल बन पड़ा है।

७. **कर्णभार**—प्रस्तुत उत्सृष्टिकांक में कर्ण का ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को अपना कवच-कुण्डल देना वर्णित है। इसमें कर्ण के उज्ज्वल चरित्र एवं दान-शीलता का प्रभावशाली निरूपण किया गया है।

८. **मध्यमव्यायोग**—इस व्यायोग में मध्यम पाण्डव (भीम) का मध्यम ब्राह्मण कुमार की रक्षा करना और हिडिम्बा से अन्त में मिलन वर्णित है। पुत्र का पिता को न पहचानते हुए धृष्टतापूर्वक माँ के सम्मुख ला उपस्थित करना बड़ा ही सरस और कौतूहलपूर्ण है।

९. **प्रतिमा**—सात अङ्कों के इस नाटक में राम-वनवास से रावण-वध तक की कथा वर्णित है। भरत का ननिहाल से अयोध्या आते हुए

प्रतिमा-मन्दिर में अपने पिता राजा दशरथ की 'प्रतिमा' दिवंगत पूर्वजों में देख उनकी मृत्यु का अनुमान लगा लेना वर्णित है।

१०. **अभिषेक**—कुल छः अंक हैं। रामायण के किष्किंधा, सुन्दर और युद्ध काण्डों की संक्षिप्त कथा पर इसका कथानक आधारित है और अन्त में रामराज्याभिषेक भी वर्णित है।

११. **अविमारक**—छः अंक हैं। राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी का राजकुमार अविमारक से प्रणय एवं विवाह वर्णित है। अविमारक का संकेत कामसूत्रों में है अतः इसे लोककथानक कह सकते हैं।

१२. **चारुदत्त**—चार अंकों का एक 'प्रकरण' है। शूद्रक के प्रसिद्ध 'मृच्छकटिक' नाटक का इसे आधार माना जाता है। इस अधूरे नाटक में निर्धन पर सदाचारी ब्राह्मण चारुदत्त तथा गुणवती वेश्या वसन्तसेना का प्रणय वर्णित है। बृहत्कथा में वेश्या-ब्राह्मण के प्रेम पर आधारित कई कहानियाँ हैं, बाद में वे लोककथाओं के रूप में प्रचलित हो गईं, अतएव इस नाटक का भी आधार यही लोककथाएँ मानी जा सकती हैं।

१३. **बालचरित्र**—यह एक पौराणिक नाटक पाँच अंकों का है। इसका उपजीव्य हरिवंश पुराण माना जाता है। इसमें कृष्ण-जन्म से कंसवध तक की कथाएँ वर्णित हैं।

नाटकों की सामान्य विशेषताएँ—भास के पात्र चाहे स्त्री हों या पुरुष सामान्य भूमिका पर ही सर्वदा दृष्टिगत होते हैं। उन्हें हम कल्पनालोक के प्राणी नहीं कह सकते, जिनमें वायवीय तत्त्वों के कारण कुछ अलौकिकता या अस्वाभाविकता आ गई हो। यही कारण है कि श्रोता या पाठक इनके नाटकों को देखते-सुनते पात्रों के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट करता है एवं अपनी भावनाओं की मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को उनमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से पाता है। देवगुणसम्पन्न पात्र जैसे राम, सीता, लक्ष्मण आदि में भी हम मानवीय भावों की ही झलक पाते हैं। उनके विचारों और क्रियाओं में कहीं भी असाधारणता नहीं आने पाई है।

जहाँ तक पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र-विकास का प्रश्न है हम भास

को बिल्कुल आधुनिक युग के नाटककारों के साथ पाते हैं। श्री मीरवर्य ने भास के इस गुण की बड़ी प्रशंसा की है।[1]

इन्होंने अपने नाटकों में जितने पात्रों का विनियोजन किया है सभी सार्थक हैं और सबका अपने अपने स्थान पर एक विशेष महत्त्व है। कवि ने व्यक्तिवैचित्र्य पर सर्वथा ध्यान दिया है और यही कारण है कि एक वर्ग के प्रतीक के रूप की अपेक्षा व्यक्तिगत विशेषताओं से युक्त पात्र हमारे सामने आते हैं।

महाभारत-कथा पर आधारित नाटकों के चरित्र-चित्रण में यद्यपि कवि को स्वतन्त्रता नहीं थी, फिर भी कर्ण और दुर्योधन का चरित्र हमारे हृदय में उदात्त भावनाओं को उत्पन्न करने में समर्थ है और इस प्रकार सहज ही वे सहानुभूति के पात्र बनते हैं।

लोककथाओं पर आश्रित नाटकों में कवि को कल्पना की रंगीनी का विनियोग करने की काफी छूट थी फिर भी उनमें अस्वाभाविकता नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भास के पात्र कालिदास और बाण की भाँति न तो रोमांटिक और कल्पनाप्रवण हैं, न भवभूति की भाँति काव्यात्मक और भावुक और न तो भट्टनारायण की भाँति अति ओजस्वी, न श्रीहर्ष की भाँति अति काल्पनिक और न शूद्रक की भाँति हास्यप्रधान और अति-यथार्थ ही हैं।

नाट्यकला—नाटककार भास ने अपने नाटकों की विषयवस्तु का चुनाव बड़ी बुद्धिमानी और कुशलता से किया है। इनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य के साथ यथा-अवसर ओजगुण की भी प्रधानता पाई जाती है। घटनाओं का विधान अत्यन्त स्वाभाविक होते हुए भी प्रभावोत्पादक और कौतूहलपूर्ण है। पात्रों के चरित्रचित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य के द्वारा सजीवता ला देना भास का प्रिय कौशल है। वाक्य सरल, चुटीले और भावोत्तेजक होने के कारण कथोपकथन के स्थलों पर विशेष नाटकीयता ला देते हैं। घटनाओं का निश्चित लक्ष्य की ओर उत्तरोत्तर बढ़कर प्रभावान्वित करना तथा अन्तर्द्वन्द्व और घात-प्रतिघातों में पड़े हुए पात्र की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन करना

१. '…in psychological subtlety Bhāsa is almost modern.'
J. A. S. B. 1917 p. 278

इनके नाटकों का मुख्य गुण है। इनके नाटक अपने युगधर्म और सांस्कृतिक तथा सामाजिक गति-विधियों के प्रतिनिधि माने जाते हैं।

इनके नाटकों को देखने से पता चलता है कि रामचरित्र से सम्बद्ध नाटकों में न तो वह रसवत्ता ही पाई जाती है और न चरित्रों का चित्रण ही उतना प्रभावपूर्ण हो सका है जितना कि एक रससिद्ध नाटककार के लिए अपेक्षित है। महाभारत या कृष्णचरित्र से सम्बन्ध रखने वाले कथानकों में नाटककार की भावनाएँ अधिक उदात्त हैं और रसानुकूल घटना-विधान का नियोजन किया गया है अतः ये नाटक मध्यम श्रेणी में आते हैं। तीसरी स्थिति उन नाटकों की है जो उदयन-कथा पर आधारित हैं। इन्हें हम कवि की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ मान सकते हैं तथा इनमें नाटककार या कवि पाठकों या दर्शकों को भावमग्न करने में अधिक सफल हुआ है। प्रणय जैसे व्यापक विषय को लेकर कवि ने बड़ी सफलता से मानव-मन की भावनाओं का रंगीन चित्रण किया है। महाकवि भास आदर्शवादी नाटककार के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्होंने सामाजिक और पारिवारिक आदर्शों का निर्वाह बड़ी मनोरमता से किया है। नाटकीय व्यंग्य से दर्शक या पाठक के कौतूहल का पूर्ण वर्द्धन हुआ है। 'प्रतिज्ञा' के द्वितीय अंक में वासवदत्ता के माता-पिता जब अपनी पुत्री के भावी पति के बारे में विचार करते हैं उसी समय कंचुकी का 'वत्सराज' कहना और वन्दी उदयन के आने का समाचार मिलना 'घटना-साहचर्य' का उज्ज्वल उदाहरण है। ऐसा ही 'अभिषेक' के पाँचवें अंक में सीता-रावण-संवाद के सिलसिले में द्रष्टव्य है।

भास के नाटक उस समय रचे गए जब कि नाटक-कला का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था, इस कारण भी कुछ त्रुटियाँ इनके नाटकों में आ गई हैं। कहीं-कहीं 'निष्क्रम्य प्रविशति' आदि द्रुतगति वाले नाटकीय निर्देशों से अस्वाभाविक औपचारिकता सी आ गई है। कवि ने कथानक-सूत्रों के संघटन में कहीं-कहीं समय की अन्विति का ध्यान नहीं दिया है। कृष्ण के निर्जीव शस्त्रास्त्रों को मानवरूप में रंगमंच पर उपस्थित करके सारी स्वाभाविकता नष्ट कर दी गई है। नाट्यशास्त्र के द्वारा वर्जित दृश्यों (युद्ध, मरणादि) को भी इन्होंने 'ऊरुभंग' आदि में सामाजिक के सम्मुख उपस्थित किया है। इनके नाटकों

की अस्वाभाविकता का कारण अपरिचित पात्रों का रंगमंच पर सहसा उपस्थित होना भी है।[1] इसी प्रकार की त्रुटि 'स्वप्नवासवदत्तम्' में 'वासवदत्ता जली नहीं है' ऐसा कहकर बाद की घटनाओं को नीरस और सामान्य बना देने में है। सामाजिकों की सारी उत्कंठा और भविष्य के परिणाम की अनिश्चितता इस भावना के बद्धमूल होने पर समाप्तप्राय हो जाती है।

कतिपय त्रुटियों के होते हुए भी भास की कला महान् है। उसमें प्रौढत्व न होने पर भी भाव-गांभीर्य और रमणीयता है। वीर रस के तो ये सफल नाटककार हैं ही पर मानव के मन का कोमल से कोमलतम पक्ष भी इनकी लेखनी के लिए अछूता नहीं। इन्होंने प्रणय, करुणा एवं विस्मय का बड़ा सुन्दर निर्वाह अपनी कृतियों में किया है।

भास की शैली—शैली की सारी विशेषताओं से विशिष्ट भास कवि की अभिव्यंजना बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। प्रसाद और ओज के साथ-साथ माधुर्य की संयोजना सहृदयों को मुग्ध कर देती है। पूरे के पूरे नाटक पढ़ जाइए, कहीं भी दूरारूढ़ कल्पना, समासबहुलता या प्रवाह में अवरोध नहीं मिलेगा। इसे कुछ विद्वानों ने रामायण का प्रभाव माना है। इनकी शैली अलंकारों पर नहीं, भावनाओं के निखार पर गर्व करती है जिससे कृत्रिमता की जगह स्वाभाविकता आ गई है। सरलता से समझ में आने वाले उन अलंकारों का प्रयोग भास ने किया है जिनसे वस्तु-चित्र और भी स्पष्ट हो गए हैं। भावबोधन में जैसी सफलता इन्हें मिली, इनके पूर्ववर्ती किसी भी कवि को नहीं। इसका एकमात्र कारण इनकी सरल शैली और अद्भुत मनोवैज्ञानिक दृष्टि ही है। इनके काव्य को हम मानव-मन के अन्तस् की विभिन्न स्थितियों में होने वाली प्रतिक्रियाओं का संकलित-चित्र (एलबम) आसानी से कह सकते हैं। पिता की मृत्यु का कारण जान कर भरत के हार्दिक उद्गारों की मार्मिक अभिव्यञ्जना कवि ने एक ही लघु श्लोक में कर दी है—'तुम्हारी पुत्र के प्रति कितनी प्रगाढ़ ममता थी और हमारा भाई के प्रति यह ऐसा

---

१. विशेष के लिए देखिए—पुशलकर : 'Bhāsa' : A study, P. 102-4

प्रेम है ?"[1] बात सीधी पर बड़ी मर्मस्पर्शिणी है। वे प्रकृति को मानवीय भावों के प्रतिबिम्ब-रूप में उपस्थित करते हैं। पाठक या दर्शक इन वर्णनों को सुनते ही भावमयता की उच्च भूमिका में पहुँच जाता है और साधारणीकरण की स्थिति आ जाती है।[2]

भास के नाटकों में तुलसी के समान पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों एवं आचारों का आदर्श उपस्थित किया गया है।[3]

भास ने लोकोक्तियों के द्वारा गागर में सागर भर दिया है।[4] भास के संश्लिष्ट चित्र नाटकों के कथानक में विशेष प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं।[5]



१. अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम्।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः॥ प्रतिमा ४।१२

२. देखिए—अविमारक ४।४, प्रतिमा २।७, तथा स्वप्नवासवदत्तम् ४।६

३. देखिए—सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता॥ प्रतिमा २।७
तथा
गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः॥ प्रतिमा ३।२४

४. 'आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते।' १९। मध्यमव्यायोग।
'रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेद्वने।' ४४। मध्यमव्यायोग।

५. स्वप्न० १।१६ तथा प्रतिमा १।३ और १।१८

भूमिका

भारतीय नाटकों का विकास

भारतीय संस्कृति की तरह इसका नाट्य-साहित्य भी पुराना है। नाटकों का कब, कैसे और कहाँ प्रादुर्भाव हुआ; यह अभी तक निर्णीत नहीं हो सका है। कुछ भी हो हमारी नाट्य-परंपरा बहुत प्राचीन है इसे भारतीय और विदेशी भी एक स्वर से स्वीकार करते हैं।

यूरोपीय विद्वानों में मैक्समूलर को इस क्षेत्र में काफी सफलता मिली और धार्मिक अवगुण्ठन में छिपे हुए वेदों के संवाद-सूक्तों को पहली बार प्रकाश में लाने का सारा श्रेय एकमात्र मैक्समूलर को प्राप्त है। पिशेल आदि विद्वानों का कथन है कि ग्रन्थिको ने बाद में इनको प्रस्तुत रूप दिया जिसे देख कर यह लगता है कि उनमें नाटकीयता अधिक है। एक विदेशी विद्वान् का कथन है कि सामवेद में जो गद्य भाग जोड़े गये हैं वे सूक्तों के लिए कोई महत्त्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि उनके विना ये सूक्त अपने आप में पूर्ण और साहित्यिक-काव्य के सुन्दर नमूने हैं। उदाहरणार्थ पुरूरवा सूक्त लिया जा सकता है।

विंटरनित्ज़ महोदय का कथन है कि इन संवादों में कुछ तो पुराने आख्यान हैं और कुछ धार्मिक नाटक। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय नाटकों का आदि स्वरूप वेदों में सुरक्षित है किन्तु जितने भी विदेशी विद्वान् हैं उनके उतने ही मत और मतान्तर हैं। कुछ भी हो वेदों के इन संवाद-सूक्तों में हमें भारतीय नाट्य-परंपरा का आदि रूप प्राप्त हो जाता है।

अभिनय की परंपरा का सूत्रपात संभवतः यजुर्वेद के 'शैलूष' (वाजसनेयि-संहिता, ३०, ४) शब्द के प्रयोग से ही हुआ हो। सामवेद में गान-विद्या का आदि स्रोत प्राप्त ही होता है और उसी से गान-कला का विकास हुआ होगा। अनेक पर्वों के नृत्यों का प्रारंभ भी अथर्ववेद (१२, १४१) से माना जाता है। इस तरह अभिनय के सभी तत्त्व वेदों से लिये गये हैं और उन सबका मिलितरूप नाटक है। इसकी पुष्टि आचार्य भरत का निम्न-लिखित श्लोक करता है—

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥

—नाट्यशास्त्र, १, १७।

संहिताओं और ब्राह्मणों का अध्ययन मेरे इस विचार की और भी पुष्टि करता है कि भारतीय नाटकों का विकास इनमें भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है।

शतपथ ब्राह्मण में सोम-लता के क्रय-विक्रय का सुन्दर नाटकीय निरूपण हुआ है। क्रेता एक ब्राह्मण और विक्रेता एक शूद्र है। ब्राह्मण कम मूल्य देना चाहता है, शूद्र अधिक लेने को लालायित है, इसी प्रसंग को लेकर दोनों में संवाद होता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य तथा उनकी दो पत्नियों कात्यायनी और मैत्रेयी का नाटकीय संवाद अपनी दार्शनिकता के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वैदिक काल का महाव्रत पर्व भी बड़ा ही नाटकीय होता था, ऐसा कई पाश्चात्य विद्वानों का मत है।

वेद, उपनिषद् और संहिताओं के बाद पाणिनि के समय तक नाट्य-साहित्य का पूर्ण विकास हो चुका था। शिलालि और कृषाश्व के नट-सूत्रों का प्रणयन हो चुका था क्योंकि पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में नट-सूत्रों का उल्लेख किया है। पतञ्जलि के महाभाष्य में नाटकों के पूर्ण प्रचार, प्रसार का उल्लेख है। इसमें ग्रन्थिक या कथकों का स्पष्ट उल्लेख है। पाणिनि-काल में ही शोभनिकों ने कंस-बध या बलिबन्धन का अभिनय किया था।

भारतीय नाट्य-परंपरा के अनुसार नाटक को पंचम् वेद माना गया है जिसे द्विजात्येतर तथा स्त्रियों के मनोरंजन के लिए चारों वेदों से संवाद, गान, अभिनय और रसों को लेकर बनाया गया था। पहले-पहल नाटक का अभिनय एक धार्मिक पर्व पर इन्द्रध्वज के सम्मानार्थ किया गया था इसमें गन्धर्व एवं अप्सराओं ने भाग लिया था।

कुछ लोग भारतीय नाट्य-परंपरा का मूल स्रोत ग्रीक नाटक मानते हैं और यवनिका शब्द की व्युत्पत्ति 'यवन देश से आने वाली' करते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि पाँच अङ्ग, दृश्यों का विधान, नेपथ्य, प्रवेश और प्रस्थान

आदि पर ग्रीक प्रभाव है किन्तु इन नाट्य-तत्त्वों का विकास भारत में स्वतन्त्र रूप से हुआ जिसका समर्थन कोनो ने किया है।[१]

बालचरित

शीर्षक—प्रस्तुत नाटक के नाम में दो शब्द जुड़े हैं, बाल और चरित। बाल (श्री कृष्ण) के चरित का नाटकीय वर्णन इसमें प्राप्त होता है।

नाट्य-प्रकार—बाल-चरित एक नाटक है और इसमें नाटक के सभी तत्त्वों का सम्यक् समावेश किया गया है। इसका कथानक प्रख्यात है, नायक धीरोदात्त है। यद्यपि इस नाटक में स्त्री पात्रों का भी सन्निवेश पर्याप्त है तथापि नायिका के रूप में किसी का अवतरण नहीं हुआ और न शृंगार रस का ही अभिनिवेश हुआ है। प्रस्तुत नाटक में कुल पाँच अंक हैं। कृष्ण-कथा प्रमुख और संकर्षण-कथा गौण (पताका) रूप में आई है।

रस—इस नाटक में ("एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।" के अनुसार) वीर रस प्रमुख, एवं भयानक, अद्‌भुत, रौद्र आदि अङ्ग रूप से आए हैं। वीर के बाद अद्‌भुत रस की ही प्रमुखता है। जब बालक के प्रभाव से अनेक असम्भव कार्य सम्भव होने लगते हैं तो दर्शक आश्चर्यचकित रह जाता है; जैसे अर्धरात्रि के गहनान्धकार में प्रकाश का होना, यमुना का वसुदेव-संतरण के लिए मार्ग देना, अनेक दिव्यायुधों का अवतरण और नन्द-कुमारिका का पुनर्जीवन आदि आदि। इन घटनाओं से दामोदर के दिव्याऽदिव्यत्व का प्रतिपादन होता है। देवकी का निम्नांकित रूप करुणा की अनेक धाराएँ प्रस्रवित करता है—

'अगणितपरिखेदा याति षण्णां सुताना-
मपचयगमनार्थं सप्तमं रक्षमाणा।
बहुगुणकृतलोभा जन्मकाले निमित्तैः
सुत इति कृतसंज्ञं कंसमृत्युं वहन्ती॥'[२]

(छः पुत्रों के विनाश से अत्यन्त शोक में संतप्त सातवें पुत्र की रक्षा

---

१. Konow has observed that the Grecian drama and the Indian drama are absolutely different in character. —Bhasa : A Study–180

२. बालचरितम् (१, १०)

करती हुई। जन्म के शुभ शकुनों से (उसके) अनेक गुणों से लुब्ध होकर 'पुत्र' ऐसा नाम रख कर कंस की मृत्यु को ले जा रही हैं)।

इसी प्रकार देवकी की मनःस्थिति और शारीरिक स्थिति की विषमता का द्योतक यह श्लोक—

'हृदयेनेह तत्राङ्गैर्द्विधाभूतेव गच्छति।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधा कृता॥'[1]

कितना कारुणिक बन पड़ा है।

रौद्र और भयानक रसों का आस्वादन राजा कंस के कथनों से होता है।[2] शाप का प्रस्तुत रूप बड़ा ही भयानक है तथा स्वयं उसका उद्घोष कितना निर्मम एवं रोमांचकारी है—

'श्मशानमध्यादहमागतोऽस्मि
चण्डालवेषेण विरूपचण्डम्।
कपालमालातिविचित्रवेषः
कंसस्य राज्ञो हृदयं प्रवेष्टुम्॥'[3]

राजा कंस के स्वप्न बड़े ही भयानक हैं।

हास्य का सृजन कंस की मृत्यु के बाद यादव कुल का राज्य होने पर ग्वालों के द्वारा बड़ी स्वाभाविकता से हुआ है जैसे—

गोपालकाः सर्वे—'हि हि गोपालकानां राज्यं संवृत्तं' आदि। भगवान विष्णु के प्रति अगाध भक्ति के प्रदर्शन से शान्त रस का समावेश होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास की प्रस्तुत नाट्य-कृति में श्रृङ्गार को छोड़कर अन्य सभी रसों का सम्यक् समावेश हुआ है।

पहला अङ्क

कथानक—नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार मंगलाचरण करता है। भगवान् विष्णु के वामनावतार, रामावतार एवं कृष्णावतार की प्रशंसा करने के पश्चात् श्रोताओं को कुछ सूचित करने के लिए जब वह आकुल रहता है तभी आकाश

१. बालचरितम् (१, १३)
२. देखिए—वही (२, १-४)
३. „ „ (२, ५)

में संचरण करने वाले महर्षि नारद का रंगमंच पर आगमन होता है। उन्हें अन्तरिक्ष के शान्त वातावरण में, स्वभाव से कलहप्रिय होने के कारण शान्ति नहीं मिलती। वे लोकहित के लिए तथा कंस के संहार के लिए देवकी के घर उत्पन्न हुए विष्णु के दर्शन के लिए आते हैं। नारद जी दुखित देवकी को हाथ में नवजात शिशु लेकर धीरे-धीरे वसुदेव की ओर जाती हुई देखते हैं। बालक कृष्ण के रूप में नारायण को देख उनकी प्रदक्षिणा करके नारद जी ब्रह्मलोक को जाते हैं। यहाँ से मूल कथानक प्रारम्भ होता है।

देवकी शिशु को हाथ में लेकर प्रवेश करती है। उसका मुख मलिन और शरीर चिन्ता से बोझिल है। कंस ने उसके छः बच्चों की हत्या कर डाली है। यह बालक उसे कंस की मृत्यु का स्वरूप मालूम होता है। देवकी अपने पति से बालक को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने और उसकी कंस से रक्षा करने को कहती है। अर्ध रात्रि, निस्तब्धता एवं गहनान्धकार में स्वयं वसुदेव भी नहीं जानते कि बालक को कहाँ ले जाएँ। वे देवकी को अन्तः-पुर में जाने के लिए कह कर स्वयं मथुरा नगरी के बाहर जाना चाहते हैं। नगर के वहिर्द्वार पर पहुँच कर उन्हें नारायण की कृपा से कुछ प्रकाश दिखायी देता है। कुछ आगे वर्षा-काल की भरी हुई यमुना दिखायी देती है। नारायण की कृपा से उसका जल दो भागों में बँट जाता है। उस पार पहुँच कर कृष्ण को समीपस्थ आभीर-ग्राम के नन्द गोप के यहाँ ले जाने को जब तक सोचते हैं तब तक मृत पुत्री को लेकर स्वयं नन्द गोप आ उपस्थित होता है। शोकपूर्ण नन्द गोप को देखकर वसुदेव उसे समझाते हैं कि वह मरी हुई पुत्री को त्याग कर बालक कृष्ण को ग्रहण करे। मृत बालिका को वहीं छोड़कर अपनी शुद्धि के लिए जब भूमि खोदता है तभी नन्द गोप को भूमि से निकलने वाली जल की चार धाराएँ प्राप्त होती हैं। वह शुद्ध होकर बालक कृष्ण को ग्रहण करता है और उसकी गुरुता से आश्चर्यान्वित होता है और वसुदेव के निर्देशानुसार वह बालक की प्रार्थना करता है कि वह हल्का हो जाए। इसी समय पाँच, विष्णु के आयुध और गरुड़ रंगमंच पर आकर बालक की स्तुति करते हैं और गोप वंश में उत्पन्न होने का निश्चय भी करते हैं। नन्द गोप बालक के सुचारु रूप से पालन-

पोषण करने का वचन देकर प्रस्थान करता है। वसुदेव मथुरा लौटने का विचार करते हैं। इसी बीच मृत बालिका के रोने की आवाज आती है। बच्चे को लेकर पुनः रुकी हुई यमुना पार करके नगर के वहिर्द्वार से होते हुए कारागार में देवकी को सारा वृत्तान्त सुनाने के लिए और उसे धीरज बँधाने के लिए आते हैं।

दूसरा अङ्क

राजभवन में चाण्डाल युवतियाँ प्रवेश करती हैं जिन्हें देख राजा कंस को बड़ा विस्मय होता है। इसके बाद शाप भी आता है जिसका वारण स्वयं राजा करते हैं। उनके पूछने पर शाप बतलाता है कि मेरा नाम वज्रबाहु है और मैं मधूक ऋषि का शाप हूँ। चाण्डाल रूप धारण करके भयंकर वेष बनाकर राजा कंस के हृदय में प्रवेश करूँगा। राजा के सो जाने पर वह अपने सहायकों के साथ अन्दर प्रवेश करता है। राज्य श्री उसे रोकती हैं तो वह कहता है कि विष्णु की आज्ञा से कंस को त्याग कर तुम भी चली जाओ। लक्ष्मी के चले जाने पर शाप की दूतियाँ निद्रित राजा के अन्दर प्रवेश करके उसे धर्माचार से विमुख कर देती हैं। प्रतिहारी के आने पर चाण्डालिनियों के भीतर घुस आने की बात राजा उससे कहता है। प्रतिहारी के द्वारा उसे विश्वास होता है कि यह सारी घटनाएँ सत्य नहीं दुःस्वप्न मात्र हैं। वह राजपुरोहित से दुःस्वप्न का फल पूछता है। वे सब इसे अन्तरिक्ष में निवास करने वाले नारायण के भू-लोक में जन्म लेने के कारण होने वाले विकार बतलाते हैं। कंचुकी के द्वारा कंस को देवकी के संतान होने की सूचना मिलती है। राजा को एक लड़की की उत्पत्ति में इतने बड़े परिवर्तन पर विश्वास नहीं होता अतः स्वयं वसुदेव को बुलाता है। वे भी देवकी को पुत्री हुई है ऐसा बतलाते हैं। राजा अपनी मृत्यु से अत्यन्त शंकित होने के कारण उसे भी मारने को तैयार हो जाता है। ऋषि-शाप के कारण, उत्पन्न होने वाली सातवें गर्भ की इस बच्ची को लेकर कंस शिला पर पटकता है। उसका एक भाग भूमि पर और दूसरा आकाश में अनेक तीखे शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित दिखाई पड़ता है। देवी के पार्षद, कुण्डोदर, शूल, नील, मनोजव आदि उनकी आज्ञा से ग्वालों के घर जन्म लेते हैं। इतने में रात्रि समाप्त हो जाती

है और राजा कंस जगकर दुःस्वप्न के शांत्यर्थ शान्ति-पाठ करने के लिए पूजा-गृह में जाते हैं।

तीसरा अङ्क

प्रवेशक के पहले ग्वालों के द्वारा हमें यह सूचना मिलजाती है कि जिस दिन से भगवान् कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ उसी दिन से व्रज में सुख और समृद्धि की वर्षा होने लगी। पशु नीरोग, वृक्ष फलयुक्त और लताएँ पुष्पाच्छादित हो गईं। वृद्ध गोपालक बालक की अनेक अद्भुत लीलाओं का तथा पूतनादि राक्षसों का वध भी वर्णन करते हैं जिससे कृष्ण के बढ़ने की सूचना मिलती है। दामोदर और संकर्षण भी गोप–कन्याओं और गोप–कुमारों के आमोद-प्रमोद का वर्णन करते हुए स्वयं भी सबके साथ हल्लीसक नृत्य करते हैं। इसी समय अरिष्ट वृषभ नामक दैत्य आता है जिसे बालकृष्ण सबके सामने सहज ही मार डालने को प्रस्तुत होते हैं। अरिष्टर्षभ कहता है कि आज मैं वृषभ का रूप धारण करके शत्रु पर अपनी सारी शक्ति से आक्रमण करके उसे मार डालूँगा और फिर वृन्दवन में सुखपूर्वक चरूँगा। मेरे गर्जन को सुनकर देव-रमणियों का गर्भपात हो जाता है, और मेरे खुरपुट के प्रहार से विस्तृत पृथ्वी थरथराने लगती है। जब वह कृष्ण को अपने सम्मुख निर्भीकता से खड़ा हुआ देखता है तो उसे बड़ा आश्चर्य होता है। भगवान् दामोदर कहते हैं कि मैं भय को नहीं जानता। इस पृथ्वीतल पर भयभीतों को निर्भय करने ही आया हूँ। दैत्य उन्हें बालक समझता है किन्तु स्वयं श्रीकृष्ण अनेक बालकों के निर्भय कर्मों का उल्लेख करके अपनी असामान्यता सिद्ध करते हैं। अरिष्टर्षभ उन्हें अपनी जाति के अनुकूल अस्त्रों को ग्रहण करने के लिए कहता है। इस पर दामोदर अपने भुजदण्डों को ही अपना स्वाभाविक शस्त्र बताते हैं। वे अपने एक पैर को पृथ्वी पर रख कर उस राक्षस से उसे हिलाने को कहते हैं पर वह ऐसा नहीं कर पाता। तत्पश्चात् उसे विश्वास होता है कि यह बालक त्रिलोक को धारण करने वाले स्वयं पुरुषोत्तम ही हैं अतएव इनके द्वारा मारे जाने पर मुझे मोक्ष की प्राप्ति अवश्य हो जाएगी। दामोदर उसे उठाकर पृथ्वी पर वज्र से आहत कज्जल गिरि के सदृश फेंक देते हैं। उसके रुधिर से मुख, नेत्र और

नाक भींग जाते हैं। उसका शरीर थरथराने लगता है और तदनन्तर वह मर जाता है। दामक आकर यमुना नद में उठे हुए कालिय नामक नाग की सूचना देता है। दामोदर उस गर्वीले सर्पराज का गर्व खर्व करने के लिए, गो ब्राह्मण के हित के लिए उसे निष्प्रभ और शान्त करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

चौथा अङ्क

दामोदर अपने पीछे आने वाली सर्पराज से भयभीत गोप-कुमारियों का वर्णन करते हैं। रंगमंच पर मत्त चक्रवाक के बच्चे की भाँति नेत्रों वाली, ईषत् प्रस्फुटित यौवन वाली, अधरोष्ठ की कान्ति से और भी अधिक मनोज्ञ। बिखरे हुए केश की पुष्पमाला और गिरते हुए उत्तरीय वाली गोप-कन्याएँ आती हैं। वे कृष्ण को क्रूर सर्पराज के निवास वाले नद में प्रवेश करने से मना करती हैं। किन्तु दामोदर उन्हें आश्वस्त करते हैं कि वे गम्भीर जल में जाकर कालिन्दी में रहनेवाले सर्प को बाहर निकाल फेंकेंगे। संकर्षण गोपियों को धैर्य देते हुए प्रचण्ड ज्वाला को उगलने वाले भयानक एवं विस्तृत फणों वाले सर्पराज को कृष्ण को देखकर विनम्र होता हुआ बतलाते हैं। वृद्ध गोपालक कृष्ण के साहस पर चकित होकर पलाश पर चढ़कर ध्यान लगाता है। संकर्षण काले नाग के फणों पर स्थित कृष्ण को दिखाते हैं जो कि इस समय काले मेघ पर स्थित इन्द्र की भाँति मालूम पड़ते हैं। दामोदर नाग को वश में करके हल्लीसक नामक नृत्य करते हैं। कालिय अपनी प्रखर एवं विषैली ज्वाला से सारे संसार को भस्म कर डालने की धमकी देता है किन्तु दामोदर की एक भुजा को तनिक भी नहीं जला पाता। कालिय दामोदर की प्रभुता से पराभूत होकर उनका वन्दन करता है और अन्त में अपनी रानियों के सहित कृष्ण की शरण में आता है। कृष्ण के पूछने पर यमुना ह्रद में अपने निवास का कारण गरुड़ का भय बतलाता है और भगवान् से अभय-दान की याचना करता है। दामोदर कहते हैं कि तुम्हारे मस्तक पर मेरा चरण-चिह्न देखकर गरुड़ तुम्हें छोड़ देगा। कालिन्दी नद से वह सपरिवार निकल जाता है। दामोदर नद से लाए हुए पुष्पों को सभी ग्वालबालों को देते हैं और गोप-गोपियों को सर्वदा

के लिए अभय प्रदान करते हैं। इसी समय भट आकर महाराज कंस का निमंत्रण देता है और मथुरा में होने वाले महाधनु नामक महोत्सव में साथियों के सहित आने की प्रार्थना करता है। भगवान् दामोदर गिरे हुए रत्न मुकुट वाले, बिखरे बालों वाले और टूटे हुए हार वाले कंस को, सिंह शावक की भाँति गर्वीले हाथी को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं।

पाँचवाँ अङ्क

राजा कंस अपने इस निश्चय से बड़ा ही प्रसन्न होता है कि वह अत्यन्त पराक्रमी कृष्ण और बलराम को ब्रज से धानुषोत्सव में सम्मिलित होने के लिए आने पर उन्हें मल्लशाला में योद्धाओं से लड़ाकर आज मरवा डालेगा। वह बारम्बार ध्रुवसेन से नन्दगोप-कुमार के आगमन को पूछता है। भट ध्रुवसेन बतलाता है कि दामोदर और संकर्षण ने धोबी से वस्त्र छीन कर महाबलशाली उत्पलापीड हाथी के दाँत को उखाड़ कर उसे मार डाला। भट पुनः बतलाता है कि अनेक मालाओं, अगरु, धूप आदि सुगन्धित द्रव्यों तथा ध्वजाओं से सजाए हुए राज-पथ से आकर राज-कुल के द्वार पर स्थित मदनिका नामक कुब्जा से सुगंधित द्रव्य लेकर उसके कुब्जात्व को दूर कर दिया। मालियों के बाजार से पुष्पों को लेकर और उन्हें मार कर धनुष-शाला की ओर गए हैं। पुनः राजा के द्वारा पूछे जाने पर बताता है कि धनुषशाला के रक्षक सिंहबल को मार कर धनुष के दो टुकड़े करके इस समय सभामण्डप की ओर गये हैं। राजा भट को आज्ञा देता है कि वह चाणूर और मुष्टिक को भेजे, यादव-कुमारों से कहे कि वे द्वन्द्व के लिए तैयार हो जाएँ। राजा भवन के ऊपर जाकर द्वन्द्व-युद्ध देखता है। चाणूर और मुष्टिक अपनी-अपनी विशेषताओं को बतलाते हुए युद्ध-भूमि पर उतरते हैं। दामोदर और संकर्षण भी आते हैं। दामोदर बतलाते हैं कि जब तक मैं कंस को न मार लूँ, मुझे सन्तोष नहीं। कृष्ण को देखकर राजा कहता है कि इनके द्वारा किए गए उग्र कर्म कोई असम्भव नहीं हैं। दुन्दुभी-वादन के साथ युद्ध प्रारम्भ होता है और चाणूर तथा मुष्टिक का बध दामोदर और बलराम कर डालते हैं। एकत्रित हुई मथुरा की सेना को वसुदेव आकर समझाते हैं और दामोदर तथा संकर्षण का परिचय देते हैं। दोनों उन्हें प्रणाम करते हैं।

वसुदेव उन्हें सदा विजयी होने का आशीर्वाद देते हैं और सत्पुत्रों के पैदा करने से अपने को धन्य मानते हैं। वसुदेव भट से कहते हैं कि दामोदर की आज्ञा से महाराज उग्रसेन को कारावास से मुक्त करके तथा अभिषेक करके यहाँ बुला लाओ। देवतागण दुन्दुभी बजाते और आकाश से पुष्पवृष्टि करते हुए कंस के निधनकर्ता की पूजा के लिए उपस्थित होते हैं। वसुदेव दैत्य-विनाशक सर्वजित वासुदेव की आज्ञा से उग्रसेन को पुनः राज्य मिलने की घोषणा करते हैं। उग्रसेन आकर भगवान् की प्रार्थना करते हैं तत्पश्चात् नारद कंस के बध के पश्चात् देवताओं की आज्ञा से गन्धर्व-अप्सराओं के सहित विष्णु की पूजा के लिए देवलोक से भूलोक पर आते हैं। दामोदर उनका सत्कार करते हैं। गन्धर्व और अप्सराएँ गाती हैं। उनकी स्तुति से दामोदर प्रसन्न हो जाते हैं और अपना परिश्रम सफल जानकर वे देवलोक वापस चले जाते हैं। यहीं परम्परित भरत-वाक्य के बाद नाटक समाप्त होता है।

मूल कथानक से अन्तर :—

प्रस्तुत नाटक को पढ़ कर यह मालूम होता है कि कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा, कल्पना एवं मौलिकोद्भावना से पर्याप्त सहायता लेकर इसके कथानक का संघटन किया है। यद्यपि बालचरित के स्रोतों का अन्तिम निर्णय नहीं दिया जा सकता तथापि कृष्ण के विषय में प्रचलित किम्वदन्तियों का लेखक ऋणी है, इसमें दो मत नहीं। अगाध पानी के द्वारा मार्ग दिए जाने वाली घटना अभिषेक में भी वर्णित है। प्रेमसागर में भी इस प्रकार की अद्भुत घटनाओं की कमी नहीं। हरिवंशपुराण तथा अन्य पुराणों में भी कृष्ण-लीला का यह रूप नहीं प्राप्त होता। कोनो के मतानुसार भास-प्रणीत बालचरित नाटक पर्याप्त प्राचीन है क्योंकि इसमें न तो राधा का ही उल्लेख है और न श्रृंगारिक प्रसंगों का ही। महाभारत और पुराणों में नन्दगोप की पुत्री का पहले से ही मृत होना तथा कृष्ण का सातवाँ पुत्र होना नहीं वर्णित है। वास्तव में वे आठवें पुत्र थे।

प्रमुख विशेषताएँ :—

महाकवि भास प्रणीत सम्पूर्ण नाटक–चक्र में अनेक समानताएँ हैं जिससे

स्पष्ट होता है कि कलेवर और कथावस्तु में पर्याप्त अन्तर होने पर भी सब में एक ही आत्मा अनुस्यूत है। बालचरित में भी बहुत सी घटनाएँ सम्वाद और नाटकीय विधान अन्य भास प्रणीत नाटकों के समान है। बालचरित में पंचरात्र की भाँति आमोद-प्रमोद मय ग्वालों के जीवन की झाँकी मिलती है। उनके पर्वों, उत्सवों और त्योहारों में नाटक ने पर्याप्त स्वाभाविकता ला दी है। इन्द्रमहा और धनुर्नहा पर्वों का उल्लेख आभीर जन-जीवन से लेखक का प्रगाढ़ परिचय द्योतित करता है। बालक दामोदर और संकर्षण तथा उत्तेजित सेना पंचरात्र के अभिमन्यु की सहज ही याद दिलाते हैं। निर्जीव शस्त्रों का सजीव रूप में रंगमंच पर अवतरण 'दूत वाक्य' में भी हो चुका है। नारद का प्रादुर्भाव कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में 'अविमारक' में हुआ है। प्रस्तुत नाटक में जिस प्रकार कंस के दुर्दिन आने पर उनकी राज्य लक्ष्मी उन्हें छोड़कर चली जाती है (बालचरित २ अंक) ठीक उसी प्रकार 'अभिषेक' (५; ४, ५,) में रावण को छोड़ कर लंका भी चली जाती है।

सम्वाद-तत्व की दृष्टि से भास बड़े सफल रहे हैं। इनके वाक्य छोटे चुस्त, नाटकीय एवं भावपूर्ण होते हैं जिसकी म० म० गणपति शास्त्री ने बड़ी प्रशंसा की है।[1] इनकी भाषा बड़ी ही सरल और प्रवाहमयी है जैसे—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥[2]

उक्त श्लोक की सरल भाषा डा० विंटरनित्ज़ द्वारा प्रशंसित हुई है। जहाँ भावनाएँ गहन या परिस्थिति जटिल हो गई है वहाँ कथोपकथन में विशेष गति दृष्टिगोचर होती है। अरिष्टर्षभ और दामोदर, कालिय और दामोदर, चाणूर और दामोदर, मुष्टिक और संकर्षण आदि के संवाद इसी प्रकार के हैं।

---

१. 'The sentences are everywhere replete with a wealth of ideas beautifully expressed, which cultured minds will easily appriciate.'
—Critical Study P. 27.

२. बाल चरितम् (१, १५)

भाषा की पात्रानुकूलता और समर्थ अभिव्यंजना-शक्ति भास की अपनी विशेषता है। कथोपकथन के बीच पद्य का सम्मिश्रण मणि-कांचन-संयोग हुआ है। कहीं-कहीं पद्य के छोटे-छोटे टुकड़े सम्वाद-तत्व को और भी प्रभावोत्पादक बनाते हैं जैसे प्रस्तुत नाटक के पंचम अंक में संकर्षण और दामोदर के सम्वाद रूप में आया हुआ दसवाँ श्लोक।

बालचरित में भी काल की एकता की कमी खटकती है। प्रथम अंक के अन्त में जब वसुदेव कृष्ण को नन्दगोप के हाथों में देते हैं तो रात्रि के पर्यवसान का वर्णन है और तत्पश्चात् वसुदेव जब मथुरा को पहुँचते हैं तो मथुरावासियों को रात्रि की मोहक निद्रा में निमग्न पाते हैं।

भास की प्रौढ़ वर्णन-शैली के अनेक काव्यात्मक रूप बालचरित में उपलब्ध होते हैं। प्रसाद, ओज एवं माधुर्य गुण से युक्त इनके अनेक श्लोक पात्रों के स्वरूप एवं गुणों को उद्घाटित करने में समर्थ हैं। उपमा, रूपक, यमक और दृष्टान्तादि अलंकार कवि को बड़े प्रिय हैं। रात्रि के घनान्धकार का वर्णन 'अविमारक' और 'चारुदत्त' के अतिरिक्त 'बालचरित' (१; १५, १६, १९) में बड़ी कलात्मकता के साथ हुआ है। नन्द गोप के द्वारा किया गया रात्रि के अन्धकार और नीरवता का बड़ा ही आलंकारिक वर्णन हुआ है—

दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना रात्रिर्वर्तते निमीलिताकारा।
संप्रावृतप्रसुप्ता नीलनिवसना यथा गोपी॥

इसमें चन्द्रमा के मेघाच्छन्न होने से रात्रि के अन्धकार की उपमा नीले वस्त्रों में अपने को ढँक कर सोई हुई गोपी से दी गई है। भास ने अधिकांश उपमान के रूप में मन्दर, (१; ६, १४, ४; ११) मेरु (२; ६,) अञ्जन-पर्वत (३; १४), गिरि (३; १५) तथा जलनिधि (५; १२) अम्भोद (५; ७) मेघ पर स्थित इन्द्र, कार्तिकेय (२; २२) शक्तिधर (२; २३) आदि का प्रयोग किया है। वसुदेव के हाथों में नवजात शिशु को सौंप कर अन्तःपुर में जाती हुई देवकी के वर्णन में—

हृदयेनेह तत्राङ्गैर्द्विधा भूतेव गच्छति।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधा कृता॥

शोकार्ता देवकी की उपमा चन्द्रमा से करके कवि आन्तरिक भावों को परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित करने में समर्थ हो सका है।

महाकवि भास भयभीत गोपियों का रूप-चित्रण बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से कर सके हैं। उनके अनुभाव और शारीरिक चेष्टाओं का वर्णन पाठक के समक्ष गोपियों के प्रकृत भोलेपन का ऐन्द्रिय चक्षु-चित्र उपस्थित करता है—

एता मत्तचकोरशावनयनाः प्रोद्भिन्नकम्रस्तनाः
कान्ताः प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचयो विस्रस्तकेशस्रजः।
सम्भ्रान्ता गलितोत्तरीयवसनास्त्रासाकुलव्याहृता—
स्त्रस्ता मामनुयान्ति पन्नगपतिं दृष्ट्वैव गोपाङ्गनाः॥

प्रथम पंक्ति में 'मत्तचकोरशावनयनाः', 'प्रोद्भिन्नकम्रस्तनाः' एवं 'कान्ताः प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचयः' गोप कुमारियों के सौन्दर्य, यौवन एवं कान्ति का द्योतक है तो 'विस्रस्तकेशस्रजः', 'सम्भ्रान्ताः', 'गलितोत्तरीयवसनाः', 'त्रासाकुलव्याहृताः' एवं 'त्रस्ता मामनुयान्ति' आदि से उनकी भयभीत मनःस्थिति की समर्थ अभिव्यञ्जना होती है।

चरित्र-चित्रण

प्रस्तुत नाटक में कुल २६ पुरुष पात्र और १० से अधिक स्त्री पात्र हैं। किन्तु इनमें से दामोदर, वसुदेव, कंस, नन्दगोप, संकर्षण और देवकी प्रमुख चरित्र हैं। प्रस्तुत नाटक के नाम के अनुसार इसके नायक कृष्ण ही ठहरते हैं। उपनायक के रूप में संकर्षण और खल नायक के रूप में कंस को लिया जा सकता है।

दामोदर :—

भगवान् कृष्ण या दामोदर को ब्रह्म का सोलह कलाओं से युक्त अवतार माना गया है।[1] नर विग्रह में भगवान् का यह अवतरण 'भीतानामभयं दातुं' तथा 'दानवानां वधार्थाय' होता है अतएव दामोदर दिव्यादिव्य नायक हुए। इनकी अनन्त शक्ति, अलौकिक सौन्दर्य एवं अद्भुत पराक्रम का दिग्दर्शन

१. कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

अनेक स्थानों पर होता है। महर्षि नारद ने अपनी स्तुति में इनके रूप, शक्ति और गुण की प्रशंसा की है।[1] दामोदर की उत्पत्ति से ही अनेक अलौकिक घटनाएँ घटित होती हैं तथा 'सुत इति कृतसंज्ञा कंसमृत्युं वहन्ती' से फल-प्राप्ति की ओर संकेत होता है। वसुदेव और नन्दगोप इनके विशेष गुरुत्व का अनुभव करते हैं और 'गिरिमिव मन्दरं'[2] के द्वारा इसकी बारम्बार पुष्टि भी हुई है। तृतीय अंक के प्रारम्भ से प्रवेशक के रूप में कृष्ण के बाल-चरित का विवरण वृद्ध गोपालक उपस्थित करता है। रमणीय गोपांगनाओं और प्रमुदित गोपकुमारों के साथ हल्लीसक नृत्य में रत दामोदर जब संहार-मूर्ति अरिष्टर्षभ के आने की सूचना पाते हैं तो उससे अकेले ही निपटने के लिए परिकरबद्ध हो जाते हैं। अरिष्टर्षभ भी बालक के अद्भुत साहस और पराक्रम को देखकर अभिभूत हो जाता है। कृष्ण भी निःशस्त्र ही उससे लड़ने को प्रस्तुत होते हैं।

भोली गोप कुमारिकाओं को बालकृष्ण के अद्भुत पराक्रम पर सहसा विश्वास नहीं होता। वे इन्हें बार-बार कालिन्दी में कूदने से मना करती हैं किन्तु उनके प्रवेश करते ही प्रचण्ड नाग शंकित होकर इन्हें नमस्कार करता है। दामोदर उसके गर्व को खर्व करके शीघ्र ही यमुना नद को आपद्रहित कर देते हैं। दामोदर मथुरा नगरी में जाकर अपनी अद्भुत शक्ति एवं अलौकिक पराक्रम का परिचय देते हैं। भट महाराज कंस के सम्मुख शत्रु के रूप में उपस्थित होने वाले कृष्ण का बड़ा ही प्रभावपूर्ण वर्णन करता है—

'जलपूर्ण मेघसमूह की भाँति श्याम वर्ण वाले, पीले वस्त्र को धारण किए हुए, पुष्पमालाओं और मयूर-पंखों से अद्भुत वेष बनाए हुए, वृद्ध विशाल नेत्रों वाले बलराम के साथ यहाँ (साक्षात्) मृत्यु ही उत्पन्न हो गया है।'[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दामोदर का प्रभाव सर्वातिशायी है।

वसुदेव :—

कवि ने वसुदेव का चित्रण मानवीय भूमिका पर किया है। वे विष्णु के अवतार से आश्वस्त देवकी की दयनीय मूर्ति को देखकर द्रवित और उसके

---

१. (१; ६-८) २. (१; ६, १४) ३. बालचरित (५; ३)

कहने पर अर्धरात्रि की नीरवता और भयानकता में मथुरा से बाहर सुरक्षित स्थान पर बालक को छोड़ आने के लिए प्रस्तुत होते हैं। क्रूर विधि के विधान से विवश होकर छः पुत्रों के निधन से शोकार्त देवकी के प्रति वे स्पष्ट रूप में कह देते हैं कि—

राहु के मुख में स्थित इस चन्द्र को क्या देखना चाहिए ? यद्यपि तुम्हारे लिए यह सुदर्शन है पर कंस इसका मृत्यु बनेगा।[१] वे बालक की गुरुता का अनुभव करते हुए उसे गर्भ में धारण करने वाली स्त्री के धैर्य की प्रशंसा करते हैं। देवकी के मन्द भाग्य और दयनीय स्थिति पर उन्हें तरस आती है। कठिन परिस्थितियों में भी वे अपना साहस नहीं छोड़ते और वर्षा की भरी हुई, ग्राह और भुजंगों से व्याप्त यमुना को अपनी भुजाओं से ही पार करने को प्रस्तुत होते हैं। उन्हें अपने भाग्य और विधि के विधान पर पूर्ण विश्वास है। नन्द गोप को अपने विशेष रूप-गुण से सम्पन्न बालक को देकर वसुदेव यादव कुल के इस अवशिष्ट बीज के धरोहर की रक्षा के लिए उनसे प्रार्थना करते हैं। प्रथम अंक के बाद वसुदेव का दर्शन पंचम अंक के उत्तरार्ध में होता है। वहीं पर इनके त्याग दया एवं मानवोचित उदारता का पूरा परिचय मिलता है। दामोदर और संकर्षण का परिचय देकर वे अपने को धन्य मानते हैं। चिरकाल से दुखित और प्रताड़ित पापी कंस के पिता को पुनः उनका राज्य लौटाकर अद्भुत त्याग का उदाहरण प्रस्तुत किया है। क्रूर कंस ने भी इन्हें धर्मशील और सत्यवादी कहा है जो इनके चरित्र की सच्ची विशेषता है।

कंस—

द्वितीय अंक में भयभीत और भविष्य के प्रति शंकित राजा कंस हमारे सम्मुख आता है। उसे अपने पौरुष पर गर्व और दृढ़ आत्मविश्वास है।[२] वह भयंकर शाप को देख कर भी डरता नहीं। जब वह उसके हृदय में प्रवेश करने को उद्यत होता है तो कंस इसे उसकी एक असम्भव प्रार्थना मानता है। अपशकुन के होने का कारण कंचुकी के मुख से भगवान का जन्म सुनकर वह उनका पता लगाता है और बाद में देवकी को ही लड़की

---

१. बालचरित (१; ११) २. बालचरित (२; २)

हुई है ऐसा जानकर उसे आश्चर्य होता है। वसुदेव यद्यपि दुखित और प्रताड़ित है फिर भी असत्य नहीं बोलेगा ऐसा उसे दृढ़ विश्वास है। किन्तु वसुदेव के आंशिक असत्य ने भी उसकी इस धारणा को अन्यथा नहीं किया। कंस देवकी की प्रार्थना पर भी कन्या-वध को प्रस्तुत हो जाता है। अनेक दानवों के विनाश के बाद उसे दामोदर की अलौकिक शक्ति पर विश्वास हो जाता है और वह कहता है कि—

मदमत्त गजराज की भाँति गम्भीर एवं सविलास गति वाले दृढ़ स्कन्ध, भुजा और मांसल तथा विस्तृत वक्षःस्थल वाले, शोभा से युक्त, कृष्ण वर्ण के इस दामोदर के पहले सुने हुए चरित्र आश्चर्यजनक (झूठे) नहीं हैं किन्तु यह तीनों लोकों को परिवर्तित करने में समर्थ हैं।[1]

वह ललित गम्भीर आकृति वाले बलराम की भी प्रशंसा ही करता है।[2]

नन्दगोप :—

नन्दगोप अपनी नवजात पुत्री के शव को वहन करता हुआ रंगमंच पर आता है। इसका विलाप बड़ा ही स्वाभाविक और हृदय-विदारक है। सामान्य प्राकृतभाषी गोप होने पर भी उसकी भाषा समर्थ और भावात्मक है। बादलों से चन्द्र के ढकने पर नीरव रात्रि की उपमा नील निवसना गोपी के साथ देना इसकी असाधारण सूझ का द्योतक है। यह एक भीरु और शंकालु गोप के रूप में चित्रित किया गया है। उसमें हीनता की ग्रन्थि सर्वदा विद्यमान है। वह स्वयं कहता है कि मेरा बल दुष्ट से दुष्ट बैल को वश में करने और वर्तनों से लदी गाड़ी को कीचड़ से निकालने तक ही सीमित है। वसुदेव के पूछने पर वह कुमार के लिए कहता है कि इसे पूरे आभीर ग्राम में दूध पीने, दही और मक्खन खाने तथा खीर और मट्ठा खाने की पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। यहाँ तक कि गोप बस्ती में यह बालक स्वामी बनकर रहेगा।

संकर्षण :—

संकर्षण का कोई अलग व्यक्तित्व हमारे सामने नहीं आता। ये दामोदर के सहायक रूप में ही आते हैं फिर भी इनका रूप-सौन्दर्य और बल

१. बालचरित (५; ८)   २. बालचरित (५; ९)

प्रभावशाली है। मुष्टिक को मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा करके जब ये कंस के सम्मुख आते हैं तो वह इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इनको कृष्ण की अतुल शक्ति पर सबसे अधिक विश्वास था।

देवकी—

देवकी का चित्रण एक पुत्रवत्सला माता के रूप में हुआ है। वह प्रारम्भ में ही एक ओर तो अपने होनहार बालक की ओर देखती है पर दूसरी ओर जब कंस की क्रूरता को सोचती है तो उसे अपना ही भाग्य-दोष दिखाई देता है। वसुदेव उसके अनेक गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उसकी पुत्र-वत्सलता सीमा-रहित है। वह अपने पुत्र को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिए उत्सुक है किन्तु उसका मातृ-हृदय शिशु को सहज ही अलग नहीं होने देता और वह कह उठती है—

देवकी—आर्यपुत्र ! मैं इसे नजर भर कर देखना चाहती हूँ।[1] वह अपने बच्चे के बारे में कभी भी अमंगल नहीं सुनना चाहती। उसे विश्वास है कि कंस उसके इस बच्चे की मृत्यु का कारण नहीं हो सकता। अपनी गोद के हँसते-खेलते छः बच्चों की हत्या देखकर उसका हृदय कैसे न विदीर्ण होता। भाग्यवश प्राप्त हुई बेचारी नन्हीं सी बच्ची के प्रति भी जब वह दया न उत्पन्न करा सकी तो उसे कितनी ग्लानि हुई होगी इसका अनुमान वसुदेव के निम्नलिखित वाक्य से हो सकता है—

शौरसेनी-पुत्र, तपस्विनी देवकी की प्रार्थना स्वीकार कर लो। लड़कियों में स्त्रियों का अधिक स्नेह होता है।[2]

उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त जो पात्र हैं उनका नाटक में कोई प्रमुख स्थान नहीं है अतएव उनके चरित्र-चित्रण की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

---

१. देवकी—आर्यपुत्र ! इच्छामि तावदेन सुदृष्टं कर्तुम्।

२. शौरसेनीमातः। क्रियतां तपस्विन्या देवक्या वाक्यम्। दारिकासु स्त्रीणामधिकतरः स्नेहो भवति। —बालचरित (२ अंक)

श्लोकानुक्रमणिका

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

नारद	: देवर्षि
वसुदेव	: कृष्ण का पिता
नन्दगोप	: वसुदेव का मित्र : गोकुलाध्यक्ष
उग्रसेन	: कंस का पिता
दामोदर	: श्रीकृष्ण, वसुदेव के पुत्र
संकर्षण	: बलदेव, ,, ,,
गरुड़	: विष्णु का वाहन
चक्र, शार्ङ्ग, शङ्ख, नन्दक	: भगवान के हथियार
राजा	: कंस : मथुरा का राजा
चाणूर	: कंस के आश्रित पहलवान
मुष्टिक	: ,, ,, ,,
भट	: कंस का नौकर (ध्रुवसेन
कंचुकी	: ,, ,, (बालाकि)
शाप	: शाप का अधिष्ठातृ देव
सब	: रक्षा करने वाले पुरुष
कुंडोदर	: कात्यायनी के नौकर
शूल	: ,, ,,
नील	: ,, ,,
मनोजव	: ,, ,,
वृद्ध गोपालक	: ग्वाला
दामक	: ,,
अरिष्टर्षभ	: असुरविशेष
कालिय	: यमुनानिवासी महानाग

स्त्री पात्र

देवकी	: श्रीकृष्ण की माता
प्रतिहारी	: देवकी की द्वारपालिका
धात्री	: मायादारिका की उपमाता
सब	: चण्डाल युवतियाँ
कात्यायनी	: देवी
सब	: घोष सुन्दरी ग्वालिन
राजश्री	: राज्य की देवता
प्रतिहारी	: कंस की द्वारपालिका : मधुकरिका
प्रतिहारी	: कंस की द्वारपालिका : यशोधरा
कौमोदकी	: भगवान् की गदा

भासनाटकचक्रे

बालचरितम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

शङ्खक्षीरवपुः पुरा कृतयुगे नाम्ना तु नारायण-
स्त्रेतायां त्रिपदार्पितत्रिभुवनो विष्णुः सुवर्णप्रभः ।

महाकविर्भासो बालचरितन्नाम नाटकं परिचिकीर्षुस्तस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमाशीर्वादात्मकं मंगलमाचरति—शंखक्षीरवपुरिति ।

पुरा = कदाचित् प्राचीनकाले । कृतयुगे = कृतं सत्यन्नाम च तद् युगं तस्मिन्—सत्ययुगे शङ्खक्षीरवपुः—शंख इव = कम्बुरिव क्षीरम् इव = दुग्धम् इव वपुः शरीरं यस्य सः नाम्ना = अभिधया तु नारायणः—नरस्यायं नारः, स एव अयनं = स्थानं यस्य सः 'आपो नारा इति प्रोक्ता अयनं स्थानमुच्यते । नारायण इति ख्यातिरि'त्याद्यभियुक्तोक्तेः ॥ त्रेत्रायां = त्रेतायुगे सुवर्णप्रभः = सुवर्णस्य = हाटकस्य प्रभा = कान्तिरिव प्रभा यस्य सः—काञ्चनच्छविः 'शोभा-कान्तिर्द्युतिश्छविरि'त्यमरः । त्रिपदार्पितत्रिभुवनः—त्रिपदा = पादत्रयेण अर्पितं = दत्तं त्रिभुवनं = लोकत्रयं येन स विष्णुः व्यापकः (वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः) =

पहले सतयुग में जो शंख और दूध के समान नारायण नाम से प्रसिद्ध थे, त्रेता युग में कुन्दन की कान्ति वाले जिस विष्णु (वामन) ने तीन पादक्रमों (पगों)

दूर्वाश्यामनिभः स रावणवधे रामो युगे द्वापरे
नित्यं योऽञ्जनसन्निभः कलियुगे वः पातु दामोदरः ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग ! पश्यामि।

(नेपथ्ये)

अहं गगनसञ्चारी।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम्।

पततसौ पुष्पमयो च वृष्टिर्नदन्ति तूर्याणि च देवतानाम्।

परमेश्वरः आसीत् स एव द्वापरे—एतन्नामके युगे = काले दूर्वाश्यामनिभः = दूर्वाश्यामसदृशः रावणबधे = दशशीर्षविनाशे रामः = दाशरथिनाम्ना प्रसिद्धः आसीत्। यः = परमेश्वरः कलियुगे = कलिकाले अञ्जनसन्निभः = अञ्जनेन = कज्जलेन सन्निभः = सदृशः सः दामोदरः—दाम = रज्जुरुदरे = कटिप्रदेशे यस्य सः कृष्णः वः = युष्मान् श्रोतॄन् सभासदः नित्यं = सर्वदा पातु = रक्षतु। नामभेदेन एक एव परमेश्वरः युगचतुष्टये युष्मान् रक्षतु इति भावः॥ १ ॥

गगने = आकाशे संचरितुं शीलमस्य, व्योमचारीति भावः।

असौ = पुरोवर्तिनी पुष्पमयी=सुमनोमयी वृष्टिः=वर्षणं पतति—खात् पुष्पवृष्टिर्भवतीति भावः। देवतानां = सुराणाम् तूर्याणि = दुन्दुभयः नदन्ति = नादं कुर्वन्ति

से तीनों लोकों को नाप लिया था, द्वापर में दूर्वा के समान श्यामल जिस रामचन्द्र ने रावण का बध किया, और जो दामोदर कलियुग में अञ्जन के समान कृष्ण शरीर वाले हैं वे सर्वदा तुम लोगों (नाटक सुनने और देखने वालों) की रक्षा करें॥ १॥

मैं आप महानुभावों को सूचित करता हूँ। अरे, मेरे सूचना देने में व्यग्र होने पर यह कैसा शब्द सुनाई पड़ता है? अच्छा, देखता हूँ।

(नेपथ्य में)

मैं आकाश में घूमने वाला हूँ।

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया।

यह (आकाश से) पुष्पवृष्टि हो रही है। देवताओं की भेरी बज रही है।

द्रष्टुं हरिं वृष्णिकुले प्रसूतमभ्यागतो नारद एष तूर्णम्॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

स्थापना

(ततः प्रविशति नारदः ।)

नारदः—

अहं गगनसञ्चारी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
ब्रह्मलोकादिह प्राप्तो नारदः कलहप्रियः ॥ ३ ॥

भोः !

क्षीणेषु देवासुरविग्रहेषु नित्यप्रशान्ते न रमेऽन्तरिक्षे ।

वृष्णिकुले = वृष्णीनाम् यादवानां कुलं वंशस्तस्मिन् प्रसूतं = प्रादुर्भूतं हरिं = विष्णुं द्रष्टुम् = अवलोकयितुम् एषः=आगन्ता नारदः = नारं ज्ञानं ददातीति एतन्नामकः देवर्षिः तूर्णं = शीघ्रम् अभ्यागतः = समायातः । इति मया ज्ञातम् ॥ २ ॥

अहं = देवर्षिः गगनसञ्चारी—गगने = आकाशे सञ्चरितुं=गन्तुं शीलमस्य= व्योमयायी त्रिषु लोकेषु = त्रिभुवने 'लोकस्तु भुवने जने ।' अमरः । विश्रुतः = प्रसिद्धः कलहप्रियः—कलहः=विग्रहः प्रियः=रुचिकरः यस्य सः नारदः=एतन्नामकः ऋषिः ब्रह्मलोकात्— ब्रह्मणः लोकस्तस्मात् = परमेष्ठिसकाशात् इह = अस्मिन् स्थाने प्राप्तः=समागतः ॥ ३ ॥

देवर्षिः स्वाभिप्रायं प्रकटयति—क्षीणेष्विति । देवासुरविग्रहेषु—देवाश्च असुराश्च तेषां विग्रहाः = कलहाः तेषु = सुरासुरकलहेषु क्षीणेषु = नष्टेषु नित्यप्रशान्ते=

वृष्णिकुल में उत्पन्न हुए श्री कृष्ण के दर्शन की इच्छा से नारद जी शीघ्रतापूर्वक आ रहे हैं॥ २ ॥

(चला जाता है ।)

स्थापना

(तत्पश्चात् नारद आते हैं ।)

नारद—मैं अन्तरिक्ष में घूमनेवाला, तीनों लोकों में प्रसिद्ध, कलहप्रिय नारद ब्रह्मलोक से यहाँ आ पहुँचा हूँ ॥ ३ ॥

अरे !

देवताओं और राक्षसों में कलह के नष्टप्राय होने से सर्वदा शान्त अन्तरिक्ष में

अहं हि वेदाध्ययनान्तरेषु तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि ॥ ४ ॥

अपि च,

भक्तिः परा मम पितामहभाषितेषु
सर्वाणि मे बहुमतानि तपोवनानि ।
सत्यं ब्रवीमि करजाग्रहता च वीणा
वैराणि भीमकठिनाः कलहाः प्रिया मे ॥ ५ ॥

तद् भगवन्तं लोकादिमनिधनमव्ययं लोकहितार्थं कंसवधार्थं वृष्णिकुले प्रसूतं नारायणं द्रष्टुमिहागतोऽस्मि । अये, इयमत्रभवती

शाश्वतप्रशमोपेते अन्तरिक्षे=गगने (अहं) न रमे = रमणं कर्तुम् असक्तोऽस्मि । अहं हि = नारदः वेदाध्ययनान्तरेषु=वेदस्याध्ययनं तस्य अन्तराणि तेषु = वेदाध्ययनान्तरकालेषु तन्त्रीश्च = महतीवीणाऽयःसूत्राणि वैराणि = कलहान् च घट्टयामि= संयोजयामि ॥ ४ ॥

देवर्षिः पुनरपि स्वस्वभावं वर्णयति–भक्तिरिति । मम = नारदस्य पितामहस्य = ब्रह्मणः भाषितानि = लपितानि 'लपितं भाषितं वचनं वचः ।' अमरः । तेषु— परमेष्ठिवचनेषु परा = उत्कृष्टा भक्तिः = श्रद्धा वर्तत इति शेषः । मे = मम सर्वाणि = अशेषाणि तपोवनानि–तपसः = तपश्चर्यायाः वनानि = विपिनानि तानि तपः काननानि बहुमतानि = अतिसम्मतानि । (अहं) सत्यम् = ऋतं ब्रवीमि = कथयामि करजाग्रः–करेजातः करजः तस्य अग्रः तेन = नखाग्रेण हता = ताडिता वीणा = महती नाम्नी वैराणि = द्वेषाः भीमकठिनाः=अत्यन्तकठिनाः कलहाः = विग्रहाः मे= मम नारदस्य प्रियाः = प्रीतिकराः सन्तीति शेषः ॥ ५ ॥

मैं नहीं रमण करता। मैं वेदाध्ययन के मध्य वीणा का वादन और कलह की सृष्टि भी करता हूँ ॥ ४ ॥

और भी,

मेरी पितामह के वचनों में परम भक्ति है। सब तपोवन मेरे लिए सम्मान करने के योग्य हैं। मैं सत्य कहता हूँ कि उंगलियों से छेड़ी गई वीणा और कठिन से कठिन वैर तथा कलह मुझे प्रिय है ॥ ५ ॥

लोकों के आदि, अमर, अव्यय, लोकहित के लिए कंस को मारने के लिए वृष्णिकुल में उत्पन्न भगवान् नारायण को देखने के लिए आया हूँ। अरे, यह

देवकी। मायया शिशुत्वमुपागतं त्रिलोकेश्वरं प्रगृह्य वसुदेवेन सह शनैः स्वगृहान्निष्क्रामति। यैषा,

लोकानामभयकरं गुरुं सुराणां
दैत्यानां निधनकरं रथाङ्गपाणिम्।
शोकार्ता शशिवदना निशि प्रशान्ता
बाहुभ्यां गिरिमिव मन्दरं वहन्ती॥ ६॥

एष भगवान् नारायणः,

अनन्तवीर्यः कमलायताक्षः सुरेन्द्रनाथोऽसुरवीर्यहन्ता।

नारदः देवकीं दृष्ट्वा तामुपवर्णयति—लोकानामिति।

लोकानां = त्रयाणां भुवनानाम् अभयकरम्—करोतीति करः, अभयस्य करः, तम्=भयहर्तारं सुराणां गुरुम्=श्रेष्ठम् रक्षकमिति शेषः। दैत्यानां=दानवानां निधनकरं = करोतीति करः निधनस्य करः तं, रथाङ्गपाणिं रथस्याङ्गं = चक्रं पाणौ = करे यस्य तम् = चक्रिणं श्रीकृष्णं शोकार्ता-शोकेन = दुःखेन आर्ता=पीडिता शशिवदना शशीः = चन्द्र इव वदनं = मुखं यस्याः सा = चन्द्रमुखी प्रशान्ता = स्थिरा निशि = रात्रौ मन्दरं गिरिमिव = एतन्नामकमचलमिव बाहुभ्यां = कराभ्यां वहन्ती = धारयन्ती एषा देवकी गृहान्निष्क्रामतीति भावः॥ ६॥

भगवन्तं दृष्ट्वा तं वर्णयति नारदः-अनन्तवीर्येति। एषः=भगवान् अनन्तवीर्यः-अनन्तं वीर्यं=पराक्रमो यस्य सः = अपरिमितपराक्रमः कमलायताक्षः-कमले इव आयते अक्षिणी यस्य सः = पद्मनेत्रः सुरेन्द्रनाथः-सुरेष्विन्द्रः तस्य नाथः =

भगवती देवकी हैं। माया से शिशुरूप को प्राप्त त्रिभुवनपति को लेकर वसुदेव के साथ धीरे-धीरे अपने घर से निकल रही हैं।

यह जो,

शोकसंतप्त चन्द्रवदनी सारे संसार को अभय प्रदान करने वाले, देवताओं के गुरु और दानवों को विनाश करने वाले चक्रधर को, रात्रि के सन्नाटे में अपनी भुजाओं से मन्दराचल की तरह धारण किए जा रही हैं॥ ६॥

यह भगवान् नारायण हैं।

इनकी शक्ति का अन्त नहीं, कमल-दल के समान इनके नेत्र विशाल हैं। ये

त्रिलोककेतुर्जगतश्च कर्ता भर्ता जनानां पुरुषः पुराणः ॥ ७ ॥

हन्तैतदुत्पन्नं कलहस्य मूलम् । यावदहमपि भगवन्तं नारायणं प्रदक्षिणीकृत्य ब्रह्मलोकमेव यास्यामि । नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय ।

नारायणाय नरलोकपरायणाय
लोकाननाय कमलामललोचनाय ।
रामाय रावणविरोचनपातनाय
वीराय वीर्यनिलयाय नमो वराय ॥ ८ ॥

अमरस्वामी असुरवीर्यहन्ता—असुराणां वीर्यं तस्य हन्तीति हन्ता = दैत्यबलविघाती त्रिलोककेतुः = त्रयाणां लोकानां केतुरिव=लोकत्रयपताकेव जगतश्च कर्ता=संसारस्य च कर्ता=विधाता जनानां=लोकानाम् भर्ता=पालकः पुराणः = सनातनः पुरुषः= पुरुषविशेषः, एष नारायणः अस्तीति शेषः ॥ ७ ॥

नारदः भगवन्तं नारायणं स्तौति—नारायणायेति । नारायणाय = त्रिविक्रमाय अथ च नरावताराय नरलोकपरायणाय—नरलोको मनुष्यलोकः अन्यत्र च जललोकः परम् उत्कृष्टम् अयनं = स्थानं यस्य तस्मै लोकाननाय—लोकः = भुवनम् आननं = मुखं यस्य तस्मै = भुवनमुखाय कमलामल० कमले = पद्मे इव अमले = स्वच्छे लोचने = नेत्रे यस्य तस्मै रावणविरोचनपातनाय—रावणस्य = दशाननस्य विरोचनस्य = एतन्नामकदानवस्य च पातनं = निधनकारणम् तस्मै, वीराय = पराक्रमिणे वराय=श्रेष्ठाय वीर्यनिलयाय—वीर्यं = शौर्यं तस्य निलयः = स्थानं तस्मै रामाय = दाशरथये नमः = प्रह्वीभावः, अस्त्विति शेषः ॥ ८ ॥

देवताओं के भी अधिदेव हैं और राक्षसों की शक्ति के नाशक हैं। तीनों लोकों की पताका हैं, संसार के कर्त्ता हैं, प्राणिमात्र के पोषक और पुराणपुरुष हैं ॥ ७ ॥

अहा, यह कलह का कारण उत्पन्न हो गया। तब तक मैं भगवान नारायण की प्रदक्षिणा करके ब्रह्मलोक को चला जाऊंगा। भगवान तीनों लोकों के आदि कारण को नमस्कार है।

नरावतार, अथवा क्षीरशायी मानव लोक ही जिनका उत्कृष्ट स्थान है अथवा मानव लोक के लिए परम प्राप्य, भुवनमुख, कमलवत् स्वच्छ नेत्रों वाले, रावण का नाश करने वाले, बल के आगार, श्रेष्ठ बलवान राम को नमस्कार है ॥ ८ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति बालहस्ता देवकी ।)

देवकी—हद्धि, पुत्तअस्स मे महाणुभावत्तणं सूअइस्सन्दाणि जम्मसमअसमुब्भूदाणि महाणिमित्ताणि पच्चक्खीकरअन्ती अवि कंसहद्‌अणिसंसत्तणं चिन्तअन्ती सुट्‌ठु ण पच्चआमि मन्दभाइणी । कहिं णु गदो अय्यउत्तो । (परिक्रम्य अग्रतो विलोक्य) अम्मो, एसो अय्यउत्तो हरिसविम्हअफुल्लणअणो इदो एव्व आअच्छदि । [हा धिक्, पुत्रकस्य मे महानुभावत्वं सूचयिष्यन्ति जन्मसमयसमुद्भूतानि महानिमित्तानि प्रत्यक्षीकुर्वत्यपि कंसहतकनृशंसत्वं चिन्तयन्ती सुष्ठु न प्रत्येमि मन्दभागिनी । क्व नु गत आर्यपुत्रः । अम्मो, एष आर्यपुत्रो हर्षविस्मयफुल्लनयन इत एवागच्छति ।]

(ततः प्रविशति वसुदेवः ।)

वसुदेवः—(सविमर्शम्) भोः ! किं नु खल्विदम् ।

भ्रमति नभसि विद्युच्चण्डवातानुविद्धै-
र्नवजलदनिनादैर्मेदिनी सप्रकम्पा ।

वसुदेवः जन्मकालीनं निमित्तं पश्यन् भगवदवतारं विमृशति—भ्रमतीत्यादिना । नभसि = खे 'नभः खं श्रावणो नभाः ।' अमरः । विद्युच्चण्डवातानुविद्धैः—विद्युता= चपलया 'तडित् सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि ।' अमरः । चण्डवातेन = प्रखरवायुना अनुविद्धाः = अनुस्यूतास्तैः । नव० -नवानां = प्रत्यग्राणां 'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः ।' अमरः । जलदानां = मेघानां निनादाः =

(चला जाता है ।)

(हाथों में बालक को लिये देवकी का प्रवेश)

देवकी—हाय, धिक्कार है, यद्यपि जन्म के समय के शुभ शकुन मेरे बालक की महानता सूचित करते हैं, तथापि मुझ मन्दभाग्य वाली को क्रूर कंस की निर्दयता के कारण पूर्ण विश्वास नहीं होता ।

(वसुदेव का प्रवेश ।)

वसुदेव—(आश्चर्य से) अरे ! यह सब क्या है ?

आकाश में बिजली और तेज हवा से युक्त नए बादलों के गर्जन से पृथ्वी कांप

इह तु जगति नूनं रक्षणार्थं प्रजाना-
मसुरसमितिहन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः ॥ ९ ॥

(विलोक्य) एषा देवकी,

अगणितपरिखेदा याति षण्णां सुताना-
मपचयगमनार्थं सप्तमं रक्षमाणा ।
बहुगुणकृतलोभा जन्मकाले निमित्तैः
सुत इति कृतसंज्ञं कंसमृत्युं वहन्ती ॥ १० ॥

गर्जितानि तैः सप्रकम्पा—प्रकम्पेन = वेपथुना सहिता मेदिनी = मही 'क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही ।' अमरः । भ्रमति = भ्रमणं करोति प्रजानां = जनानां 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने ।' अमरः । रक्षणार्थं = पालनार्थम् असुराणां = राक्षसानां समितिः = सभा समूहः इति यावत् । तस्या हन्ता=विनाशकः इह = अस्मिन् जगति = संसारे अद्य = इदानीं विष्णुः = व्यापकः परमेश्वरः नूनं = निश्चितम् अवतीर्णः = प्रादुर्भूतः ॥ ९ ॥

(एषा वसुदेवपत्नी) षण्णाम् = रससंख्यकानां सुतानां = पुत्राणाम् अपचयो =विनाशः तस्य गमनार्थं=प्राप्तिनिमित्तकम् अगणितपरिखेदा-अगणिताः—अनन्ताः परितः खेदाः = दुःखानि यस्याः सा सप्तमम् = एतत्संख्याकं पुत्रं रक्षमाणा = रक्षन्ती जन्मकाले = प्रादुर्भावसमये निमित्तैः = शुभकारणैः बहुगुणकृतलोभा-बहुगुणैः कृतो लोभो यस्याः सा = विशेषगुणलुब्धा सुत इति = पुत्र इति कृतसंज्ञं-कृता संज्ञा यस्य तम् = विहिताभिधं कंसमृत्युं = कंसहन्तारं श्रीकृष्णं वहन्ती = धारयन्ती याति=गच्छति ॥ १० ॥

रही है । आज इस संसार में प्रजा की रक्षा और असुरों का विनाश करनेवाले विष्णु अवश्य ही अवतीर्ण हुए हैं ॥ ९ ॥

(देखकर) यह देवकी हैं ।

छः पुत्रों के विनाश से अत्यन्त शोक से सन्तप्त सातवें पुत्र की रक्षा करती हुई । जन्म के शुभ शकुनों से (उसके) अनेक गुणों से लुब्ध होकर 'पुत्र' ऐसा नाम रखकर कंस की मृत्यु को ले जा रही हैं ॥ १० ॥

देवकी—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

वसुदेवः—देवकि ! अर्धरात्रः खलु वर्तते । प्रसुप्तो मधुरायां सर्वो जनः । तस्माद् यावन्न कश्चित् पश्यति, तावद् बालं गृहीत्वाऽपक्रामामि ।

देवकी—कहिं अय्यउत्तो इमं णइस्सदि । [क्वार्यपुत्र इमं नेष्यति ।]

वसुदेवः—देवकि ! सत्यं ब्रवीषि । अहमपि न जाने । किन्तु, एकच्छत्रच्छायां पृथिवीं समाज्ञापयति दुरात्मा कंसः । तत् क नु खल्वयमायुष्मान् नेतव्यो भविष्यति । अथवा यत्र दैवं विधास्यति, तत्र बालं गृहीत्वाऽपक्रामामि ।

देवकी—अय्यउत्त । इच्छामि दाव णं सुदिट्ठं कत्तुं । [आर्यपुत्र ! इच्छामि तावदेनं सुदृष्टं कर्तुम् ।]

किं द्रष्टव्यः शशाङ्कोऽयं राहोर्वदनमण्डले ।
त्वयाऽप्यस्य सुदृष्टस्य कंसो मृत्युर्भविष्यति ॥ ११ ॥

वसुदेवः देवकीं सान्त्वयन्नाह–किं द्रष्टव्य इति । राहोः=सैंहिकेयस्य वदनमण्डले =मुखमण्डले अयं = बालः शशाङ्कः=चन्द्रमाः किं द्रष्टव्यः = कथं दर्शनीयः त्वया= देवक्या सुदृष्टस्य = सुप्रेक्षितस्यापि अस्य = बालस्य कंसः = तव भ्राता मृत्युः = निधनकरः भविष्यति = भविता ॥ ११ ॥

देवकी—(समीप जाकर) आर्यपुत्र की जय ।

वसुदेव—हे देवकी ! यह आधी रात है । मथुरा में सब लोग सोए हुए हैं । तो जब तक कोई दूसरा नहीं देखता तब तक बालक को लेकर मैं चल रहा हूँ ।

देवकी—आर्यपुत्र इसे कहाँ ले जाएंगे ?

वसुदेव—देवकी ! सत्य कहती हो । मुझे भी नहीं मालूम । क्योंकि दुरात्मा कंस का सारी पृथ्वी पर एक छत्र राज्य है । तो इस चिरंजीव को कहां ले जाना चाहिए । अथवा जहां भाग्य हमें ले जाय वहीं बालक को ले जायंगे ।

देवकी—आर्यपुत्र ! तो इसे मैं नजर भरकर देखना चाहती हूँ ।

वसुदेव—अरी अत्यन्त पुत्रवत्सले ।

राहु के मुख में स्थित इस चन्द्र को क्या देखना चाहिये । (यद्यपि) तुम्हारे लिए यह सुदर्शन है (पर) कंस इसका मृत्यु बनेगा ॥ ११ ॥

वसुदेवः—अयि अतिपुत्रवत्सले !

देवकी—सव्वहा ण भविस्सदि । [सर्वथा न भविष्यति ।]

वसुदेवः—यद् भवत्याऽभिहितं, तत् सर्वदैवतैरभिहितं भवतु । आनय ।

देवकी—गह्णदु अय्यउत्तो । [गृह्णात्वार्यपुत्रः ।]

वसुदेवः—(गृहीत्वा) अहो गुरुत्वं बालस्य । साधु,

विन्ध्यमन्दरसारोऽयं बालः पद्मदलेक्षणः ।
गर्भे यया धृतः श्रीमानहो धैर्यं हि योषितः ॥ १२ ॥

देवकि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरम् ।

देवकी—एसा गच्छामि मन्दभाआ । (निष्क्रान्ता ।) [एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

वसुदेवः—एषा देवकी,

वसुदेवः बालं गृहीत्वा तस्य महाभारं सूचयति-विन्ध्येत्यादिना । पद्मदलेक्षणः-पद्मदले = कमलपत्रे इव ईक्षणे = नेत्रे यस्य सः अयं बालः = शिशुः विन्ध्यमन्दरयोः सार इव सारो यस्य सः = विन्ध्याचलमन्दराचलवद्गुरुः (अयं) श्रीमान् = शोभासम्पन्नः बालः यया = स्त्रिया गर्भे = स्वोदरे धृतः = ऊढः तस्याः = योषितः = अङ्गनायाः अहो = आश्चर्यं धैर्यं = धारणसामर्थ्यं श्लाघ्यमिति भावः ॥ १२ ॥

वसुदेव—अयि अत्यन्त पुत्र में स्नेह रखने वाली !

देवकी—ऐसा कदापि न होगा ।

वसुदेव—जो आपने कहा यह सब देवताओं का कथन हो। (बालक को) लाओ ।

देवकी—आर्यपुत्र ! (इसे) लें ।

वसुदेव—(लेकर) अहा, बालक की गम्भीरता । सत्य ही

यह कमलदल के समान लोचन वाला बालक विन्ध्य व मन्दर पर्वत की भांति सारवान है । इस शोभासम्पन्न (बालक) को जिसने गर्भ में धारण किया उस स्त्री का धैर्य धन्य है ॥ १२ ॥

देवकी ! अन्दर चली जाओ ।

देवकी—यह अभागिन जाती हूँ । (जाती है ।)

वसुदेव—यह देवकी,

हृदयेनेह तत्राङ्गैर्द्विधाभूतेव गच्छति।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधाकृता ॥ १३ ॥

हन्त प्रविष्टा देवकी। यावदहमपि नगरद्वारं संश्रयामि। एष भोः,

प्रथमसुतविनाशजातमन्युर्नृपतिभयाकुलितः प्रगृह्य बालम्।
त्वरिततरमिह प्रयामि मार्गे गिरिमिव मन्दरमुद्वहन्भुजाभ्याम् ॥१४॥

(परिक्रम्य) इदं नगरद्वारम्। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) अये प्रसुप्तो मधुरायां सर्वो जनः। यावदपक्रामामि। (परिक्रम्य) निष्क्रान्तोऽस्मि मधुरायाः। अहो बलवांश्चायमन्धकारः। सम्प्रति हि,

---

वसुदेवः देवकीमुपवर्णयति—हृदयेनेत्यादिना। एषा=देवकी इह=अस्मिन् स्थाने हृदयेन = चेतसा तत्र अङ्गैः = स्वशरीरैः द्विधाकृता = भागद्वयविभक्ता इव गच्छति = याति यथा = येन प्रकारेण चन्द्रलेखा = इन्दुकला द्विधाकृता सती नभसि = आकाशे तोये = जले च याति = गच्छति तथा देवकी याति इति शेषः ॥ १३ ॥

वसुदेवः बालं नयन् स्वाभिप्रायं प्रकटयति-प्रथमेत्यादिना।

(अहं वसुदेवः) प्रथमसुत०-प्रथमस्य = पूर्वोत्पन्नस्य सुतस्य = पुत्रस्य विनाशेन = निधनेन जातः = उत्पन्नः मन्युः = क्रोधः यस्य सः नृपतिभया०-नृपतेर्भयं तेन आकुलितः = व्याकुलः सन् बालं = शिशुं प्रगृह्य = गृहीत्वा भुजाभ्याम् = बाहुभ्याम् 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोरि'त्यमरः। मन्दरम् = एतन्नामकं गिरिमिव उद्वहन् = नयन् इह = अस्मिन् मार्गे = अध्वनि त्वरिततरं = शीघ्रतरं प्रयामि = गच्छामि ॥ १४ ॥

यहां से हृदय और शरीर से दो भागों में बटी हुई जाती है। जैसे आकाश और जल में (प्रतिबिम्ब रूप से) चन्द्रमा की कला दो भागों में बट जाती है॥

हा, देवकी चली गयी। तो मैं भी नगर के द्वार का आश्रय लेता हूँ अरे यह—

मैं पहले के पुत्रों के नाश से क्रुद्ध और राजा के भय से व्याकुल इस बालक को लेकर यहां से शीघ्र ही भुजाओं से मन्दराचल को उठाए हुए रास्ते में जा रहा हूँ॥

(घूमकर) यह नगर का दरवाजा है। तो इसमें प्रवेश करूं।

(प्रवेश करके) अरे, मथुरा के सब लोग सो गये। तो भागता हूँ। (भागकर) मैं मथुरा से निकल आया हूँ। अरे! बहुत गाढ़ा अन्धकार है। इस समय—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ १५ ॥

अहो तमसः प्रभुत्वम्।

अप्रकाशा इव दिशो घनीभूता इव द्रुमाः।
सुनिविष्टस्य लोकस्य कृतो रूपविपर्ययः ॥ १६ ॥

नाहं गन्तुं समर्थः। अये दीपिकालोकः। किन्तु खलु दुरात्मा कंसो ममापक्रमणं ज्ञात्वा दीपिकाभिः परिवृतो मां ग्रहीतुमागतो भवेत्। भवत्वहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि। (खड्गमुत्कोशयति। निवृत्त्यावलोक्य) अये न कश्चिद् दृश्यते। आ,

---

वसुदेवः नक्तं तमो वर्णयति—लिम्पतीवेत्यादिना। तमः=गाढान्धकारः अंगानि= मम शरीराणि लिम्पति = आच्छादयति इव नभः = आकाशम् अञ्जनं = कज्जलं वर्षति = वृष्टिं करोति इव, दृष्टिः = प्रेक्षणसामर्थ्यम् असत्पुरुषसेवा—असतां = दुष्टानां पुरुषाणां = जनानां सेवा=शुश्रूषा इव निष्फलतां—निर्गतं फलं यस्मात् तस्य भावस्तत्ता ताम् = फलरहिततां गता = प्राप्ता ॥ १५ ॥

दिशः = आशाः अप्रकाशाः इव = प्रकाशरहिताः इव द्रुमाः = वृक्षाः घनीभूता इव=निबिडीभूता इव दृश्यन्ते इति शेषः। सुनिविष्टस्य—सुतरां निविष्टस्य = स्थितस्य लोकस्य = भुवनस्य रूपविपर्ययः—रूपस्य विपर्ययः = स्वरूपविपर्यासः अनेन तमसा कृतः = विहितः। घनान्धकारेण अन्यथैव प्रतिभाति ॥ १६ ॥

अन्धकार मेरे अङ्गों को पोत रहा है, मानो आकाश से अंजन बरसता है। और दुराचारी पुरुष की सेवा की भांति मेरी दृष्टि निष्फल हो गयी है ॥ १५ ॥

अन्धकार का कितना प्रभाव है।

दिशायें प्रकाशविहीन सी, वृक्ष सम्पुञ्जित से दीखते हैं। सुन्दर बसे हुए संसार का इसने रूप ही बदल दिया है ॥ १६ ॥

मैं जाने में असमर्थ हूँ। अरे! दीपक का प्रकाश! क्या पापी कंस मुझको भगा हुआ जानकर दीपकों-(दीपक-वाहकों) से घेर कर पकड़ने आया है। अच्छा, मैं इसका गर्व चूर करूंगा। (तलवार खींचता है। घूमकर और देखकर) अरे, कोई नहीं दिखायी देता। ओ,

तमसा संवृते लोके मम मार्गमपश्यतः ।
अपक्रमणहेतोस्तु कुमारेण प्रभा कृता ॥ १७ ॥

एष मार्गः । यावदपक्रामामि । अये इयं भगवती यमुना कालवर्षसम्पूर्णा स्थिता । अहो व्यर्थो मे परिश्रमः । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् ।

इमां नदीं ग्राहभुजङ्गसङ्कुलां
महोर्मिमालां मनसापि दुस्तराम् ।
भुजप्लवेनाशु गतार्थविक्लवो
वहामि सिद्धिं यदि दैवतं स्थितम् ॥ १८ ॥

आलोकाभावेऽपि कुमारप्रभावेण आलोकः प्राप्त इति वर्णयति वसुदेवः—तमसा संवृत इति । लोके = भुवने तमसा = अन्धकारेण संवृते=आच्छादिते मम=वसुदेवस्य मार्गम् = अध्वानम् । 'अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः ।' अमरः । अपश्यतः = अनवलोकयतः अपक्रमणस्य = पलायनस्य हेतुः=कारणं 'हेतुर्ना कारणं बीजमि'त्यमरः । तस्य, कुमारेण = शिशुना प्रभा = प्रकाशः—कान्तिः कृता = विहिता ॥ १७ ॥

वसुदेवः बालं नयन् मध्येमार्गं कालिन्दीमुपवर्णयति इमां नदीमित्यादिना । यदि = चेत् दैवतं = प्रारब्धं स्थितं = शुद्धं तर्हि ग्राहभुजङ्गसंकुलां—ग्राहैः = मकरादिभिः भुजङ्गैः = सर्पादिभिश्च संकुलां = व्याप्तां महोर्मिमालाम् ऊर्मीणां= लहरीणां माला = श्रेणी, महती चासौ ऊर्मिमाला तां = बृहदूर्मिश्रेणीं मनसा = चेतसाऽपि दुस्तरां=तर्तुमशक्याम् इमां = पुरोवर्तिनीं नदीं = सरितं कालिन्दीं

चारो ओर अन्धकार की गहनता के कारण मुझे मार्ग नहीं दिखाई देता अतः (मेरे) भगने के लिए कुमार ने प्रकाश कर दिया ॥ १७ ॥

यह मार्ग है । मैं भागता हूँ । अरे, यह भगवती यमुना इस समय वर्षा से भर गई हैं । आः मेरा परिश्रम व्यर्थ गया । इस समय क्या करना चाहिये ? अच्छा, समझा ।

यदि मेरा भाग्य होगा तो मकर, सर्प आदि से व्याप्त और उत्ताल तरंगों वाली मन से भी दुस्तर इस नदी कालिन्दी को मैं धैर्यपूर्वक अपनी भुजा रूपी नौका से (पार करके) कार्य सिद्ध करूंगा ॥ १८ ॥

(तथा कृत्वा सविस्मयम्) हन्त द्विधा छिन्नं जलम्, इतः स्थितम्, इतः प्रधावति। दत्तो मे भगवत्या मार्गः। यावदपक्रामामि। (अवतीर्य) निष्क्रान्तोऽस्मि यमुनायाः। अये हुङ्कारशब्द इव श्रूयते। व्यक्तं घोषसमीपे वर्तते मन्दभाग्यः। आ, अत्र च समीपघोषे मम वयस्यो नन्दगोपः प्रतिवसति। स खलु मया कंसाज्ञया निगलितो न कशाभिहतश्च। यावत् प्रविशामि। अथवा रात्रौ वसुदेवः प्रविष्ट इति शङ्किता गोपालका भविष्यन्ति। तस्मादिह न्यग्रोधपादपस्याधस्तात् प्रभातवेलां रजन्याः प्रतिपालयामि। भो भो न्यग्रोधदेवताः! यद्ययं बालो लोकहितार्थं कंसवधार्थं वृष्णिकुले प्रसूतश्चेद्, घोषात् कश्चिदिहागच्छतु। न, न, मम वयस्यो नन्दगोप एवागच्छतु।

(ततः प्रविशति दारिकां गृहीत्वा नन्दगोपः।)

नन्दगोपः—(सशोकम्) दालिए! दालिए! किं दाणि णो गेहलच्छि

भुजप्लवेन—भुजौ=हस्तौ एव प्लवः तेन = करनौकया गतार्थविक्लवः सन्—गतः =नष्टः अर्थस्य = कार्यस्य विक्लवः = वैक्लव्यम् अधैर्यं यस्य सः एवंभूतस्सन् आशु = शीघ्रं सिद्धिं = कार्यसिद्धिं वहामि = प्राप्नोमि ॥ १८ ॥

(वैसा करके आश्चर्य से) अरे! यह जल दो भागों में बंट गया, इधर ठहरा है उधर बह रहा है। भगवती (यमुना) ने मुझे मार्ग दिया है तो पार करता हूँ। (पार करके) यमुना से निकल आया। अरे हुंकार सा सुनायी पड़ता है। मैं अभागा गोप-बस्ती के पास ही खड़ा हूँ। हाँ, इस पास की गोप बस्ती में मेरा मित्र नन्द गोप रहता है। कंस की आज्ञा से मैंने उसे जंजीर में बांधा था कोड़े नहीं लगाये थे। तो जाता हूँ, अथवा रात्रि में वसुदेव घुस आया है ग्वालों में ऐसी शंका हो जायेगी। अतएव इस वट वृक्ष के नीचे ही सबेरा होने तक रहूँगा। हे वट देवता यदि यह बालक लोक के लिए, कंस के वध के लिए वृष्णिकुल में पैदा हुआ हो तो गोप-ग्राम से कोई यहाँ चला आवे। नहीं-नहीं मेरा मित्र नन्द गोप ही आवे।

(बच्ची को लेकर नन्द गोप का प्रवेश)

नन्द गोप (शोक से)—पुत्रि! पुत्रि!! आज तुम हमारी गृहलक्ष्मी में रमण न

ण लमिअ तदो णो उज्झिअ णं गच्छषि। षम्पदि हि महिषषदसम्पादष-दिषं अहो बलिअं अन्धआलं।

दुद्दिणविणट्ठजोह्ना लत्ती वट्टइ णिमीलिआकाला।
षम्पाउदप्पषुत्ता णीलणिवषणा जहा गोवी ॥ १९ ॥

अज्ज हि अड्ढलत्ते अम्हाणं कुडुम्बिणीए जषोदाए पषूदा इअं च दाली तवष्षिणी जादमत्ता एव्व ओग्गदप्पाणा षंवुत्ता। षुवे अम्हाणां घोषष्ष उइदो इन्दयञ्ञो णाम उष्षवो भविष्षदि। ता मा खु एदं दुक्खं गोवजणेहिं अणुहूअमाणं त्ति मए एक्काइणा णिगलगुलुचलणेण इमं दालिअं गह्णिअ णिग्गदो म्हि। जषोदा वि तवष्षिणी णेव जाणादि दालओ वा दालिआ वा पषूद त्ति मोहं गदा। दालिए! दालिए!। [दारिके! दारिके! किमिदानीं नो गेहलक्ष्म्यां न रन्त्वा ततो न उज्झित्वा ननु गच्छसि। संप्रति हि महिषशतसंपातसदृशोऽहो बलवानन्धकारः।

दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना रात्रिर्वर्तते निमीलिताकारा।
संप्रावृतप्रसुप्ता नीलनिवसना यथा गोपी ॥ १९ ॥

नन्दः बालिकां बहिर्नयन् अन्धकारं विशिनष्टि—दुर्दिनेत्यादिना। एषा=पुरोवर्तिनी रात्रिः = क्षपा दु० दुर्दिनेन=मेघच्छन्नेन दिनेन 'मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्'। अमरः॥ विनष्टा=विलुप्ता ज्योत्स्ना=चन्द्रिका 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना।' अमरः॥ यस्यां सा निमीलिताकारा—निमीलितः = प्रच्छन्नः आकारः =

करके, हम लोगों को छोड़कर जा रही हो। इस समय तो सैकड़ों भैंसों के समूह की भांति भयंकर अन्धकार है।

मेघ से आच्छन्न होने के कारण चन्द्रप्रकाश से हीन ज्योत्स्ना सब आकारों को छिपाने वाली यह रात्रि, नीले वस्त्र से अङ्गों को ढँके हुए किसी सोती हुई गोपी की भांति मालूम पड़ती है॥ १९॥

आज रात्रि में मेरी गृहिणी यशोदा की यह बेचारी पुत्री पैदा होते ही मर गई। कल हमारे गोपग्राम के उचित इन्द्र यज्ञ नामक उत्सव होगा। अतएव मैं इसे लेकर (दुख से) बोझिल चरणों से एकाकी निकल आया हूँ जिससे इतर गोपगणों के द्वारा इसका दुख न अनुभव किया जाए। बेचारी यशोदा भी मूर्च्छा के कारण यह नहीं जानती कि पुत्र उत्पन्न हुआ है अथवा पुत्री। (हा) पुत्री-पुत्री।

अथ ह्यर्धरात्रेऽस्माकं कुटुम्बिन्या यशोदया प्रसूतेयं च दारी तपस्विनी जातमात्रैवापगतप्राणा संवृत्ता । श्वोऽस्माकं घोषस्योचित इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो भविष्यति । तद् मा खल्वेतद् दुःखं गोपजनैरनुभूयमानमिति मयैकाकिना निगलगुरुचरणेनेमां दारिकां गृहित्वा निर्गतोऽस्मि । यशोदापि तपस्विनी नैव जानाति दारको वा दारिका वा प्रसूत इति मोहं गता । दारिके ! दारिके ! ।]

वसुदेवः—को नु खल्वयं रात्रौ परिदेवयति । अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं तपस्वी ।

नन्दगोपः—किं दाणिं णो गेहलच्छिं ण लमिअ तदो णो उम्भिअ णं गच्छषि । [किमिदानीं नो गेहलक्ष्म्यां न रन्त्वा ततो न उज्झित्वा ननु गच्छसि ।]

वसुदेवः—स्वरेण प्रत्यभिजानामि । मम वयस्येन नन्दगोपेन भवितव्यम् । यावच्छब्दापयामि । वयस्य नन्दगोप ! इतस्तावत् ।

नन्दगोपः—(सभयम्) अविहा को दाणिं मं पुदपुलुवेण विअ षलयोगेण णन्दगोव ! णन्दगोव ! त्ति मं षद्दावेदि । किण्णु लक्खशा वा, आदु पिषाषो वा । ईदिषीए पदिभअलअणीए मदलिआ दालिआ मम

स्वरूपं यस्याः सा=प्रच्छन्नस्वरूपा वर्त्तते यथा काचिद्गोपी नीलनिवसना—नीलं = कृष्णं निवसनं = वस्त्रं यस्याः सा संप्रा०—संप्रावृता = सम्यक् प्रकारेणाच्छादिता चासौ प्रसुप्ता च = कृतशयना च वर्तते तथा इयं रात्रिः वर्तते इति शेषः । अत्रोपमाऽलङ्कारः ॥ १९ ॥

वसुदेव—इस रात्रि में कौन रो रहा है ? अवश्य ही यह हमारे समान बेचारा दुःखी है ?

नन्दगोप—इस समय हमारी गृहलक्ष्मी में रमण न करके हमें छोड़कर चली जा रही हो ।

वसुदेव—स्वर से पहचानता हूँ । यह मेरा मित्र नन्दगोप होना चाहिये । (अच्छा) तो पुकारता हूँ । मित्र नन्दगोप, इधर आओ ।

नन्दगोप—(डरकर) कौन इस समय मुझको पहले सुने हुए स्वर वालेके समान नन्दगोप नन्दगोप ऐसा मुझे पुकारता है ? क्या कोई राक्षस अथवा पिशाच है

हत्थे। किं णु हु कलिष्षं। [अविहा क इदानीं मां श्रुतपूर्वेणेव स्वरयोगेन नन्दगोप ! नन्दगोप ! इति मां शब्दयति। किं नु राक्षसो वा, उत पिशाचो वा। ईदृश्यां प्रतिभयरजन्यां मृता दारिका मम हस्ते। किं नु खलु करिष्यामि।]

वसुदेवः—वयस्य नन्दगोप ! अलमन्यशङ्कया। इतस्तावत्।

नन्दगोपः—(कर्णं दत्त्वा। सावधानम्) अम्मो, षलयोगेण भट्टा वषुदेव त्ति जाणामि। जाव उवषप्पिष्षं। अहव तहिं मम किं कय्यं। एदिणा कंषष्ष लञ्ञो वअणं षुणिअ अवलद्धो कषाहिं तालिअ णिअलेहि बद्धो म्हि। ता ण गमिष्षं। अहव धिक्खु मे णिषंष भावं। मम गुण-षहष्षं किदं, दुक्खे दुक्खइ, षुहे षुहिणो होदि, तहवि षुमलामि लाअ-षाषणेण किदं एक्कबन्धणं। जाव उवषप्पिष्षं। इयं दाली। किं कलिष्षं। होदु एवं दाव कलिष्षं। (उपसृत्यावलोक्य च। सविस्मयम्) पभादा लअणी। एषो भट्टा वषुदेवो दालअं गह्णिअ ठिदो। (उपसृत्य) जेदु भट्टा जेदु। [अम्मो, स्वरयोगेन भर्ता वसुदेव इति जानामि। यावदुप-सर्प्स्यामि। अथवा तत्र मम किं कार्यम्। एतेन कंसस्य राज्ञो वचनं श्रुत्वाऽपराद्धः कशाभिस्ताडयित्वा निगलैर्बद्धोऽस्मि। तन्न गमिष्यामि। अथवा धिक् खलु मे नृशंसभावम्। मम गुणसहस्रं कृतं, दुःखे दुःख्यति, सुखे सुखी भवति, तथापि स्मरामि राजशासनेन कृतमेकबन्धनम्। यावदुपसर्प्स्यामि। इयं दारी। किं करिष्यामि। भवत्वेवं तावत् करिष्यामि। प्रभाता रजनी। एष भर्ता वसुदेवो दारकं गृहीत्वा स्थितः। जयतु भर्ता जयतु।]

वसुदेवः—वयस्य नन्दगोप ! अपि भगवतीभ्यो गोभ्यः कुशलम्।

प्रकार की भयंकर रात्रि में यह मरी हुई लड़की मेरे हाथ में है। (अब मैं) क्या करूंगा।

वसुदेव—मित्र नन्द गोप दूसरी शंका न करो। इधर आओ।

नन्दगोप—(कान देकर, सावधानी से) अये, आवाज से तो मैं इन्हें अपना स्वामी वसुदेव मानता हूँ। तो जाऊँ अथवा वहाँ मेरा क्या काम ? राजा कंस की आज्ञा से इसने मुझे अपराधी बनाकर कोड़े लगाये और जञ्जीर में बाँधा था। तो नहीं जाऊंगा यह बेटी, क्या करूं ? अच्छा तो ऐसा ही करूंगा। सवेरा हो गया है। यह स्वामी वसुदेव पुत्र को लेकर खड़े हैं। जय हो स्वामी, जय हो।

वसुदेव—मित्र नन्द गोप, भगवती गौएँ कुशल से तो हैं ?

नन्दगोपः—भाआमि भट्टा ! भाआमि । जदि कंषो लाआ षुणादि- वषुदेवष्प दालओ णन्दगोवष्ष हत्थे णाषो णिक्खित्तो त्ति, किं बहुणा, गदं एव्व मे षीषं । [बिभेमि भर्तः ! बिभेमि । यदि कंसो राजा शृणोति- वसुदेवस्य दारको नन्दगोपस्य हस्ते न्यासो निक्षिप्त इति, किं बहुना, गतमेव मे शीर्षम् ।]

वसुदेवः—(आत्मगतम्) हन्त विपन्नं कार्यम् । उक्तज्ञाः खलु नृशंसाः । तदेवं कथयामि । (प्रकाशम्) वयस्य नन्दगोप !

यद्यस्मि भवतः किञ्चिन्मया पूर्वकृतं भवेत् ।
तस्य प्रत्युपकारस्य कालस्ते समुपागतः ॥ २० ॥

नन्दगोपः—किं किं पच्चुवकालं त्ति । जदि कंषो वा होदु, कंषष्ष पिदा उग्गषेणो वा होदु । आणेदु भट्टा दालअं । [किं किं प्रत्युपकार इति । यदि कंसो वा भवतु, कंसस्य पितोग्रसेनो वा भवतु । आनयतु भर्ता दारकम् ।]

वसुदेवः नन्दगोपं पूर्वमुपकृतं स्मारयति- यद्यस्मीति । यदि = चेत् भवतः = नन्दगोपस्य मया = वसुदेवेन किञ्चित् = ईषदपि पूर्वकृतं=पूर्वोपकारः । भवेत् = स्यात् तर्हि तस्य = पूर्वकृतस्य इदानीं प्रत्युपकारस्य ते = तव नन्दगोपस्य कालः = समयः समुपागतः = प्राप्तः । एष एव तव प्रत्युपकारसमयः प्रति- भातीति भावः ॥ २० ॥

नन्दगोप— डरता हूँ स्वामी, डरता हूँ । यदि राजा कंस ने सुना कि वसुदेव का लड़का नन्दगोप के हाथ में धरोहर (की भाँति) रखा है तो अधिक क्या कहूँ मेरा सिर ही चला जायगा ।

वसुदेव (मन में)—हाय कार्य बिगड़ गया । पापीजन अनिष्ट को समझ जाया करते हैं । तो ऐसा कहता हूँ (प्रकट) मित्र नन्दगोप ! ।

यदि मैंने पहले कभी तुम्हारे साथ कोई उपकार किया हो तो यह उसके प्रत्युपकार का समय आ गया है ॥ २० ॥

नन्दगोप—क्या, क्या ? प्रत्युपकार ? यदि कंस हो चाहे उसका पिता उग्रसेन हो स्वामी पुत्र को लाइए ।

वसुदेवः—वयस्य ! गृह्यताम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! अचोक्खिदम्हि, मदलिआ दालिआ गहीदा । मुहुत्तअं पडिवालेदु भट्टा । जाव जमुणाहलं गच्छिअ चोक्खं कलेमि । [भर्तः ! अशौचितोऽस्मि, मृता दारिका गृहीता । मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भर्ता, यावद् यमुनाजलं गत्वा शौचं करोमि ।]

वसुदेवः—वयस्य ! घोषवासात् प्रकृत्या शुचिरेव भवान् ।

नन्दगोपः—तेण हि अम्हाणं घोषस्स उइदं पङ्खुणा चोक्खं कलेमि । [तेन ह्यस्माकं घोषस्योचितं पांसुना शौचं करोमि ।]

वसुदेवः—कोऽत्र दोषः । क्रियतां शौचम् ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि । (तथा कुर्वन् सविस्मयम्) अच्छ-लीअं अच्छलीअं भट्टा ! अच्छलीअं । पङ्खूणि मग्गमाणस्स धलणीं भिन्दिअ जुगप्पमाणा षलिलधाला उट्ठिदा । [यद् भर्ताज्ञापयति । आश्चर्य-माश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम् । पांसून् मार्गयतो धरणीं भित्त्वा युगप्रमाणा सलिल-धारोत्थिता ।]

वसुदेवः—बालस्यैव प्रभावः । क्रियतां शौचम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! तह । (तथा कृत्वोपसृत्य) भट्टा ! अअम्हि । [भर्तः ! तथा । भर्तः ! अयमस्मि ।]

वसुदेव—मित्र लो इसे ।

नन्दगोप—थोड़ी देर रुकिए स्वामिन् तब तक मैं जमुना जल में जाकर स्नान कर लूँ ।

वसुदेव—मित्र आभीर ग्राम में रहने से तो आप स्वयं ही पवित्र हैं ।

नन्दगोप—तो मैं अपनी बस्ती के योग्य मिट्टी से ही अपने को पवित्र कर लूँ ।

वसुदेव—इसमें क्या दोष ? पवित्र हो जाइए ।

नन्दगोप—जैसी आपकी आज्ञा । (वैसा करके, विस्मय के साथ) आश्चर्य है स्वामी आश्चर्य है । धूल खोजते ही पृथ्वी को फोड़ कर पानी की युग (जुवा) के समान मोटी धारा निकली ।

वसुदेव—यह बालक का ही प्रभाव है । पवित्र हो लो ।

नन्दगोप—अच्छा स्वामी । (वैसा करके, निकट जाकर) स्वामिन् ! यह मैं हूँ ।

स्त्री विग्रहात् पुरुषवीर्यबलातिदर्पा।
यस्यार्थमाहवमुखेषु मयारिसङ्घाः
प्रभ्रष्टनागरथवाजिनराः प्रभग्नाः ॥ २३ ॥

कौमोदकी —

कौमोदकी नाम हरेर्गदाहमाज्ञावशात् सर्वरिपून् प्रमथ्य।
मया हतानां युधि दानवानां प्रक्रीडितं शोणितनिम्नगासु ॥ २४ ॥

मध्या–विष्णोः करे लग्नं सुवृत्तं मध्यं यस्याः सा = हरिहस्तस्पर्शशोभनमध्यभागा-स्त्रीविग्रहात् = स्त्रियाः विग्रहस्तस्मात् = अङ्गनाशरीरात् पुरुषवीर्यबलातिदर्पा-पुरुषस्य वीर्यबलयोः दर्पमतिक्रान्ता = पुंशक्तिपराक्रमातिगर्वा यस्य=विष्णोः अर्थं=कार्यसाधनं प्रयोजनम् यत्कृते इत्यर्थः आहवमुखेषु = युद्धभूमिषु प्रभ्रष्टनागरथवाजिनराः–प्रभ्रष्टाः नागाः रथाः वाजिनः नराश्च येषां ते = विनष्टहस्तिस्यन्दनतुरगमनुष्याः अरिसंघाः = शत्रुसमूहाः मया = शार्ङ्गेण (शार्ङ्गेण = धनुषा) प्रभग्नाः = पराजिताः ॥ २३ ॥

इदानीं कौमोदकी नाम्नी गदा स्वीयं परिचयं ददाति–कौमोदकीत्यादिना।

अहं = कौमोदकी (अत्र) = कौमोदकी नाम = एतदभिधया प्रसिद्धा हरेः = विष्णोः गदा = आयुधविशेषोऽस्मि (भगवतः) आज्ञावशात = आदेशात् सर्व-रिपून्–सर्वे च ते रिपवस्तान् = अशेषारीन् प्रमथ्य = पराजित्य युधि = आहवे हतानां = निधनं गतानां दानवानां = दैत्यानां शोणितनिम्नगासु = शोणितानां निम्नगाः तासु = रुधिरसरित्सु मया = कौमोदकया प्रक्रीडितम् = क्रीडा कृता ॥२४॥

बल और पराक्रम के गर्व को चूर्ण करने वाला मैं शार्ङ्ग हूँ। विष्णु की कार्यसिद्धि के लिए युद्धभूमि में मैंने शत्रुसमूह के हाथी रथ, घोड़े, और (पैदल) मनुष्यों को नष्ट करके (उन्हें) पराजित किया है ॥ २३ ॥

कौमोदकी—

मैं कौमोदकी नामक विष्णु की गदा हूँ। (विष्णु की) आज्ञा से मैंने शत्रुओं का मन्थन करके और युद्धक्षेत्र में अपने द्वारा मारे गए दानवों के रुधिर की नदियों में क्रीडा की है ॥ २४ ॥

शङ्खः—

अहं हि शङ्खः क्षीरोदाद् विष्णुना स्वयमुद्धृतः ।
मम शब्देन नश्यन्ति युद्धे ते देवशत्रवः ॥ २५ ॥

नन्दकः—

नन्दकोऽहं न मे कश्चित् सङ्ग्रामेष्वपराङ्मुखः ।
गच्छामि स्मृतमात्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २६ ॥

चक्रः—

चक्रशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दका दैत्यमर्दनाः ।

सम्प्रति भगवतः पार्श्ववर्ती शङ्खः स्वपराक्रमं प्रदर्शयति-अहमित्यादिना—

अहं हि = शङ्खः = शङ्खनामायुधम् विष्णुकरे वसामि । क्षीरोदात् = दुग्धसागरात् विष्णुना = हरिणा स्वयम् = आत्मना उद्धृतः = निष्कासितः युद्धे = आहवे ते = प्रसिद्धाः शत्रवः देवशत्रवः=सुरद्वेषिणः मम=शङ्खस्य शब्देन = रवेण नश्यन्ति = परासवो भवन्ति ॥ २५ ॥

अधुना भगवत्पार्श्ववर्ती खड्गः नन्दकनामा स्वपरिचयं-ददाति-नन्दकोऽहमिति ।

अहं = नन्दकनामा खड्गोऽस्मि संग्रामेषु=युद्धेषु कश्चित् = कोपि योद्धा मे = मम अपराङ्मुखः = पुरःस्थितः न = नभवितुमर्हति । प्रभविष्णुना = महाबलवता विष्णुना = हरिणा स्मृतमात्रेण = स्मरणादेव गच्छामि=तमुपसर्पामि ॥ २६ ॥

आयुधानि स्वागमनकारणं प्रदर्शयन्ति—चक्रेत्यादिना ।

दैत्यमर्दनाः = दानवविनाशकाः चक्रशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दकाः—तत्तदभिधाः

शङ्ख—

मैं क्षीरसागर से स्वयं विष्णु के द्वारा निकाला गया शंख हूँ। मेरे घोष मात्र से युद्ध में देवताओं के शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥ २५ ॥

नन्दक—

मैं नन्दक नामक कृपाण हूँ युद्ध में मेरे सामने कोई परांमुख न होने वाला नहीं है। अर्थात् सब भाग जाते हैं। भगवान विष्णु के स्मरण करने मात्र से मैं उनके पास पहुँच जाता हूँ ॥ २६ ॥

चक्र—

चक्र, शार्ङ्ग, गदा, शंख और नन्दक नामक विष्णु के सभासद हम सब उनकी

वासुदेवस्य कार्यार्थं प्राप्ताः पारिषदा वयम् ॥ २७ ॥

तस्मादागम्यताम् । वयमपि मनुष्यलोकमवतीर्णस्य भगवतो विष्णोर्बालचरितमनुचरितुं गोपालकवेषप्रच्छन्ना घोषमेवावतरिष्यामः ।

सर्वे—तथास्तु । (विष्णुमुपस्थिताः)

वसुदेवः—वयस्य ! बाल एव नमस्यताम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! तह ! लाअदालअ ! णमो दे णमो दे । ही, होदु, अत्ताणं एव अत्ताणं णिव्वावेहि । अम्हाणं गोपजणष्ष तुमं गह्निदुं को बलपलक्कमो । [भर्तः ! तथा । राजदारक ! नमस्ते नमस्ते । ही, भवतु, आत्मनैवात्मानं निर्वाहय । अस्माकं गोपजनस्य त्वां ग्रहीतुं को बलपराक्रमः]

चक्रः—नमो भगवते नारायणाय । भगवन् ! महाविष्णो !

कार्याण्यकार्याण्यमरासुराणां
त्वया भविष्यन्ति बहूनि लोके ।

वयं=चक्रादयः पारिषदाः=पार्श्ववर्त्तिनः वासुदेवस्य–वसुदेवस्यापत्यं तस्य=श्रीकृष्णस्य कार्यार्थं = तत्कार्यसाधनार्थं प्राप्ताः = समुपस्थिताः ॥ २७ ॥

चक्रः भगवन्तं नारायणं स्तौति—कार्याणीत्यादिना । (हे) यदुवंशकेतो—यदुवंशस्य केतुः तत्सम्बुद्धी = यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण लोके = भुवने 'लोकस्तु भुवने जने' । अमरः । अमरासुराणां—अमराश्चासुराश्च तेषां = देवदानवानां बहूनि =

कार्य-सिद्धि के लिए पहुँच गए हैं ॥ २७ ॥

तो हम सब चलें, नरलोक में अवतीर्ण हुए भगवान विष्णु के बालचरित का रसास्वादन करने के लिए ग्वालों के वेष में छिपकर हम सब आभीर-ग्राम में अवतीर्ण हों ।

सब—ऐसा ही हो । (विष्णु के समीप जाते हैं ।)

वासुदेव—मित्र ! बालक को नमस्कार करो ।

नन्दगोप—स्वामिन् ! ऐसा, राजकुमार ! नमस्कार नमस्कार । अच्छा, आप स्वयं ही अपना निर्वाह करें । हम ग्वालों में तुम्हें ग्रहण करने की बल-पराक्रम कहाँ है ?

चक्र—भगवान नारायण को नमस्कार । भगवन् ! महाविष्णु !! संसार में आपके द्वारा अनेकों बार देवों की रक्षा और दानवों का विनाश होगा अतएव हे

तस्माज्जनस्यास्य लघुत्वयोगात्
कुरु प्रसादं यदुवंशकेतो ! ॥ २८ ॥

वसुदेवः—गृह्यताम् ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि । (गृह्णाति) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

वसुदेवः—वयस्य ! प्रभाता रजनी । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

नन्दगोपः—अच्छलीअं अच्छलीअं भट्टा ! अच्छलीअं । इमे बन्धणे पडिदे । [आश्चर्यमाश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम् । इमे बन्धने पतिते ।]

वसुदेवः—सर्वमेतत् कुमारस्य प्रभावः । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

वसुदेवः—अथवा एहि तावत् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! अअम्हि । [भर्तः ! अयमस्मि ।]

वसुदेवः—

जाने नित्यं वत्सलं त्वां प्रकृत्या

बहुतराणि कार्याण्यकार्याण्यमरासुराणां = देवानां रक्षारूपाणि दानवानाञ्च विनाशरूपाणि कर्माणि त्वया वासुदेवेन भविष्यन्ति = वर्तिष्यन्ते । तस्मात् = तस्मात् कारणात् अस्य = नन्दगोपस्य जनस्य = लोकस्य लघुत्वयोगात् = तुच्छत्वभावात् प्रसादम्=अनुग्रहं कुरु=विधेहि ॥ २८ ॥

वसुदेवः नन्दगोपं प्रबोधयन् न्यासरक्षणे सावधानतया भवितव्यमिति उपदिशति—जाने इत्यादिना ।

यदुवंशियों में श्रेष्ठ इस अकिंचन नन्द गोप पर आप कृपा करें ॥ २८ ॥

वसुदेव—इन्हें लीजिये ।

नन्दगोप—जैसी स्वामी की आज्ञा ।

वसुदेव—मित्र ! रात्रि समाप्त हो गई आप लौट जायँ ।

नन्दगोप—आश्चर्य, आश्चर्य स्वामी आश्चर्य । ये दोनों बन्धन गिर पड़े ।

वसुदेव—यह सब कुमार का प्रभाव है । आप लौट जाँय ।

नन्दगोप—जैसी स्वामी की आज्ञा ।

वसुदेव—अथवा इधर आओ ।

नन्दगोप—स्वामी मैं यह हूँ ।

वसुदेव—(हे गोप !) मैं तुम्हें स्वभाव से ही नित्य वात्सल्यभावयुक्त

स्नेहोऽप्यस्मिन्नर्थ्यते रूढभावः ।
अस्मिन् काले दग्धभूयिष्ठशेषं
न्यस्तं बीजं रक्षितुं यादवानाम् ॥ २९ ॥

कुमारस्य किं करिष्यति भवान् ।

नन्दगोपः—सुणादु भट्टा । एकस्सिं गेहे गच्छिअ खीरं पिबइ, अण्णस्सिं गेहे गच्छिअ दधिं भक्खइ । अपरस्सिं गेहे गच्छिअ णवणीदं गिलइ । अण्णस्सिं गेहे गच्छिअ पाअसं भुञ्जइ । इदरस्सिं गेहे गच्छिअ तक्कघटं पलोअदि । किं बहुणा, अम्हाणं घोषस्स पदी होइ । [श्रुणोतु भर्ता । एकस्मिन् गेहे गत्वा क्षीरं पिबति । अन्यस्मिन् गेहे गत्वा दधि भक्षयति । अपरस्मिन् गेहे गत्वा नवनीतं गिलति । अन्यस्मिन गेहे गत्वा पायसं भुङ्क्ते । इतरस्मिन् गेहे गत्वा तक्रघटं प्रलोकते । किं बहुना, अस्माकं घोषस्य पतिर्भवति ।]

वसुदेव—एवमस्तु । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

(हे गोप) त्वाम् = भवन्तं नन्दगोपं प्रकृत्या = स्वभावेन नित्यं = सर्वदा वत्सलं = सन्तानवत्सलं जाने = जानामि अस्मिन् = एतस्मिन् ममसुते रूढभावः = प्रवर्द्धमानः स्नेहोपि = प्रियतापि 'प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः ।' अमरः । अर्थ्यते = प्रार्थ्यते दिदृक्षुरस्मीति शेषः । अस्मिन् काले = सम्प्रति दग्धभूयिष्ठशेषं = भृशदाहावशिष्टं न्यस्तं = न्यासरूपेण स्थितं यादवानां = यदुवंशीयानां बीजम् = निदानं श्रीकृष्णं रक्षितुं = पालयितुम् अर्थ्यते = प्रार्थ्यते ॥ २९ ॥

मानता हूँ । अब इस बालक में तुम्हारे बढ़े हुए स्नेह को देखना चाहता हूँ और इस समय अत्यन्त जलने के बाद बचे हुए यादव वंश के बीजस्वरूप इस धरोहर श्री कृष्ण के पालन की याचना करता हूँ ॥ २९ ॥

कुमार के लिए आप क्या करेंगे ?

नन्दगोप— स्वामी सुनें । एक घर में जाकर दूध पीयेगा, दूसरे घर में जाकर दही खाएगा और अन्य घर में जाकर मक्खन खाएगा, किसी घर में जाकर खीर खाएगा और कहीं मट्ठा टटोलेगा । अधिक क्या कहूँ हमारे आभीर-ग्राम का यह स्वामी बनेगा ।

वसुदेव— ऐसा ही हो । आप लौट जाँय ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्तः ।) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

वसुदेवः— ननु निर्गतो नन्दगोपः । यावदहमपि मधुरामेव यास्यामि । (परिक्रम्य) रुदितशब्द इव श्रूयते । किं नु खलु कंसभयात् प्रतिनिवृत्तो नन्दगोपः । (परिक्रम्य) अये प्रत्यागतप्राणेयं दारिका । यावदिमां गृहीत्वा देवक्या हस्ते निक्षिप्य दुरात्मानं कंसं वञ्चयामि । (गृहीत्वा) अहो गुरुत्वमस्याः । एतदपि कुमारात् किञ्चिदन्तरं महद् भूतम् । यावदपक्रामामि । अये इयं भगवती यमुना तथैव स्थिता । यावद-पक्रामामि । निष्क्रान्तोऽस्मि यमुनायाः । एतन्नगरद्वारम् । तथैव प्रसुप्तो मथुरायां सर्वो जनः । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) इदं खलु दुरात्मनः कंसस्य गृहं ज्येष्ठाश्रितमिव दृश्यते । इदमस्मदीयं गृहं श्रियारूढमिव दृश्यते । यावदहमप्यन्तःपुरं प्रविश्य देवकीं समाश्वासयामि । ईश्वराः स्वस्ति कुर्वन्तु । (निष्क्रान्तः ।)

प्रथमोऽङ्कः ।



नन्दगोप—जैसी स्वामी की आज्ञा । (प्रस्थान)

वसुदेव—नन्दगोप चला गया मैं भी मथुरा को जाता हूँ । (लौटकर) रोने का सा शब्द सुनाई पड़ता है । क्या कंस के भय से नन्द गोप लौट आया है ? (घूमकर) अरे ! इस बच्ची के प्राण लौट आए । तो इसे लेकर देवकी के हाथ में डालकर पापी कंस को ठगूँगा । (लेकर) अहा ! यह कितनी भारी है । यह भी कुमार से कुछ अधिक भारी हो गई है । तो जाता हूँ । अरे ! भगवती यमुना वैसे ही रुकी हैं, तो मैं पार करता हूँ । मैं यमुना से निकल आया । यह नगर का (बाहरी) द्वार है । मथुरा में सब लोग वैसे ही सोये हैं । मैं प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश करके) यह दुरात्मा कंस का घर अलक्ष्मी से युक्त (शोभाहीन) दिखायी देता है । यह हम लोगों का घर शोभा से युक्त दिखाई देता है । मैं भी रनिवास में प्रवेश करके देवकी को धीरज बँधाता हूँ । ईश्वर कल्याण करें ।

(प्रस्थान)

प्रथम अंक समाप्त ।



अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशन्ति चण्डालयुवतयः ।)

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ । अम्हाणं कण्णाणं तुए सह विवाहो होदु । [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यानां त्वया सह विवाहो भवतु ।]

(ततः प्रविशति राजा ।)

राजा—भोः ! किन्नु खल्विदम् ।

यन्मेदिनी प्रचलिता पतिताग्रहर्म्या
सन्तारनौरिव विकीर्णमहोर्मिमाला ।
सेऽन्यैः प्रधानगुणकर्मफलैर्निमित्तैः

कंसो नृपः अग्रतः चाण्डालकन्यां दृष्ट्वा निमित्तेन शुभमशुभम् वा तर्कयति-यन्मेदिनीत्यादिना ।

विकीर्णमहोर्मिमाला—विकीर्णाः = विस्तृताः महोर्मीणां = बृहत्तरंगाणां मालाः श्रेणयः यस्यां सा सन्तारनौः—सन्तारस्य प्लवनस्य नौः = तरी इव = यथा मेदिनी = अवनिः 'क्ष्मावनिर्मेदिनी मही' अमरः । यत् = येन कारणेन प्रचलिता = प्रकम्पिता तत् = तथा पतिताग्रहर्म्या—पतितानि = निपतितानि अग्रहर्म्याणि = धनिकभवनशिखराणि यस्यां सा 'हर्म्यादि धनिनां वासः' । अमरः । प्रधानगुणकर्म

(चाण्डाल कन्याओं का प्रवेश)

सब—आइये स्वामी आइये; हम लोगों की कुमारियों से आपकी शादी हो ।

(राजा का प्रवेश)

राजा—अरे ! यह सब क्या ?

फैली हुई विकराल तरंग श्रेणी की नौका के समान यह पृथ्वी डगमगा रही है तथा ऊँची अट्टालिकाओं के शिखर भाग गिर रहे हैं । श्रेष्ठ गुण, कर्मफल

किं वाग्रतो व्यसनमभ्युदयो नु तन्मे ॥ १ ॥

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ अम्हाणं कण्णआणं तुए सह विवाहो होदु । [आगच्छ । भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यकानां त्वया सह विवाहो भवतु ।]

राजा—

यस्मान्न रक्षिपुरुषाः प्रचरन्ति केचिद्
यस्मान्न दीपकधराः प्रमदाश्चरन्ति ।
तस्मादिमा मम गृहं समनुप्रविष्टा
नीलोत्पलाञ्जननिभा भयदाः श्वपाक्यः ॥ २ ॥

फलैर्निमित्तैः—प्रधानगुणं कर्मफलं येषां तानि तैः = श्रेष्ठगुणकर्मफलवद्भिः सेव्यैः = सेवनीयैः निमित्तैः = लक्ष्मभि = 'निमित्तं हेतुलक्ष्मणोः' । अमरः । शकुनादिभिरिति यावत् मे = मम अग्रतः = भविष्यकाले व्यसनं = पराभवः किं वा = आहोस्वित् अभ्युदयः = समुन्नतिः किन्तु—स्यादिति भावः ॥ १ ॥

राजा कंसः स्वयमेव दुश्शकुननिरीक्षणकारणं निरूपयति—यस्मान्नेत्यादिना ।

केचित् = केपि रक्षिपुरुषाः = रक्षाकार्ये नियुक्ताः पुरुषाः यस्मात्=कारणात् न प्रचरन्ति = न भ्रमन्ति दीपकधराः—दीपकं = प्रकाशं धरन्ति = नयन्तीति सप्रकाशाः प्रमदाः=योषितः यस्मात् = यस्मात् कारणात् न चरन्ति = न गच्छन्ति तस्मात् = तस्मात् कारणात् नीलोत्पलाञ्जननिभान् = नीलोत्पलेन = नीलकमलेन अञ्जनेन=कज्जलेन च निभाः=संकाशाः 'निभसंकाशनीकाशाः ।' अमरः । भयदाः = भीतिप्रदाः श्वपाक्यः = श्वानम् पाचयन्ति यास्ताः = चाण्डालकन्याः मम = राज्ञः (कंसस्य) गृहं = भवनं समनुप्रविष्टाः = समागताः ॥ २ ॥

से उत्पन्न दृश्यमान शकुनों से मेरा भविष्य में पराजय अथवा विजय होने वाली है ? ॥ १ ॥

सब—आइये भर्ता ! आइये । हमारी कन्याओं का तुम्हारे साथ विवाह हो ।

राजा—

'यहाँ कोई पहरादेने वाले नहीं घूमते (और) न कोई स्त्रियाँ हाथ में दीपक लेकर खड़ी हैं इसीलिए यह नीलकमल और अंजन के सदृश भय देने वाली चाण्डालिनियाँ मेरे घर में पूर्ण रूप से प्रविष्ट हो गई हैं ॥ २ ॥

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ । अम्हाणं कण्णआणं तुए सह विवाहो होदु । [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यकानां त्वया सह विवाहो भवतु ।]

राजा—अहो सृष्टाः खल्वेताश्चण्डालयुवतयः–

क्रोधेन नश्यति सदा मम शत्रुपक्षः
सूर्यः शशी हुतवहश्च वशे स्थिता मे ।
योऽहं यमस्य च यमो भयदो भयस्य
तं मापवादवचनैः परिधर्षयन्ति ॥ ३ ॥

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ । [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ ।]

राजा—आ अपध्वंस । कथं सहसैव नष्टाः । यावदिदानीमभ्यन्तरमेव प्रविशामि ।

(ततः प्रविशति शापः ।)

कंसः चाण्डालकन्यकाभिः स्वधर्षणाकरणं निरूपयति-क्रोधेनेत्यादिना ।

मम = राज्ञः कंसस्य शत्रुपक्षः = वैरिसंघः सदा = सर्वदा क्रोधेन = कोपेन नश्यति = नाशं याति सूर्यः = दिवाकरः शशी = चन्द्रः हुतवहः = विभावसुः इमे सर्वे मे = मम वशे = अधीने स्थिताः = तिष्ठन्ति यः = वर्तमानः अहं = कंसः यमस्य = अन्तकस्यापि यमः=अन्तकः भयस्य=भीतेः भयदः=भीतिप्रदः तम्=तादृशं मा=मां राजानम् अपवादवचनैः=निन्दितवचोभिः परिधर्षयन्ति=तिरस्कुर्वन्ति ॥३॥

सब—आइये भर्ता ! आइये । हमारी कुमारियों का तुम्हारे साथ विवाह हो ।

राजा—अरे यह चाण्डाल कुमारिकाएँ निश्चित ही बड़ी ढीठ हैं ।

मेरे क्रोध मात्र से ही मेरा शत्रु समूह नष्ट हो जाता है । सूर्य, चन्द्र और अग्नि मेरे वश में हैं । मैं जो यम का भी यमराज और भय को भी भय देने वाला हूँ; उस मुझको चण्डाल-युवतियाँ तिरस्कृत कर रही हैं ॥ ३ ॥

सब—आओ भर्ता आओ ।

राजा—अरी नष्ट हो जाओ । कैसे यकायक नष्ट हो गईं ? अच्छा तो मैं अब अन्दर ही जाता हूँ ।

(शाप का प्रवेश)

शापः—हं, केदानीं प्रविशसि । इदं खलु मम गृहं संवृत्तम् ।

राजा—

कोऽयं विनिष्पतति गर्भगृहं विगाह्य
उल्कां प्रगृह्य सहसाञ्जनराशिवर्णः ।
भीमोग्रदंष्ट्रवदनो ह्यहिपिङ्गलाक्षः
क्रोधो महेश्वरमुखादिव गां प्रपन्नः ॥ ४ ॥

को भवान् ।

शापः—किं न जानीषे माम् । अहं खलु मधूकस्य ऋषेः शापो वज्रबाहुर्नाम ।

शापः = शापाभिमानी देवता ।

सविग्रहं शापं दृष्ट्वा तद्वचनमाकर्ण्य तद्रूपं वर्णयति—कोऽयमित्यादिना ।

अयम् = आगन्तुकः कः = अपरिचितजनः गर्भगृहं = सद्ममध्ये विगाह्य = विलोड्य विनिष्पतति = आगच्छति । उल्काम् = अङ्गारं सहसा = झटिति प्रगृह्य= गृहीत्वा अञ्जनराशिवर्णः—अञ्जनस्य = कज्जलस्य राशेः = समूहस्य वर्णः = तत् सदृशः अस्य रूपमिति शेषः । भीमं=भयङ्करम् उग्रदंष्ट्रम्=उन्नतदन्तं वदनं=मुखं यस्य सः अहिपिङ्गलाक्षः—अहेः=सर्पस्य (इव) पिंगले=पिङ्गलवर्णे अक्षिणी=नेत्रे यस्य सः महेश्वर०—महेश्वरस्य = शंकरस्य मुखम्=आननं तस्मात् निःसृतः (साक्षात्) क्रोध इव = कोप इव गां = पृथिवीं प्रपन्नः = समागतः । अत्र उपमालंकारः ॥ ४ ॥

शाप—हम् इस समय कहाँ घुस रहे हैं ? यह तो निश्चित ही मेरा घर हो गया ।

राजा—

यह घर के अन्दर यकायक घुसता हुआ कौन चला आ रहा है ? अंगार लिये हुए कज्जल के ढेर की तरह इसका रंग है । भयंकर (बड़े-बड़े) तीखे दाँतों वाला मुख और सर्प के नेत्रों के समान लाल नेत्रों वाला, महेश्वर के मुख से निकला हुआ साक्षात् क्रोध की भाँति पृथ्वी पर आया है ॥ ४ ॥

आप कौन हैं ?

शाप—क्या मुझे नहीं जानते ? मैं मधूक ऋषि का शाप वज्रबाहु हूं ।

श्मशानमध्यादहमागतोऽस्मि चण्डालवेषेण विरूपचण्डम् ।
कपालमालातिविचित्रवेषः कंसस्य राज्ञो हृदयं प्रवेष्टुम् ॥ ५ ॥

कंसः—असम्भाव्यमर्थं प्रार्थयसि ।

सौवर्णकान्ततरकन्दरकूटकुञ्जं
मेरुं न कम्पयति वायसपक्षवातः ।
हास्योऽसि भोः ! समकरक्षुभितोर्मिमालं
पातुं य इच्छसि कराञ्जलिना समुद्रम् ॥ ६ ॥

शापः स्वागमनकारणं स्वयमेव कंसं निरूपयति—श्मशानेत्यादिना । अहं = शापः विरूपचण्डं—विरूपेण = भयङ्कररूपेण चण्डं = भयङ्करं = रूपादपि भयङ्करं चाण्डाल वेषेण—चाण्डालस्य = श्वपाकस्य वेषः = रूपं तेन श्मशानमध्यात्—शव-दाहभूमेः आगतोस्मि=प्राप्तोऽस्मि । कपालमालातिविचित्रवेषः—कपालानां माला= नृकरोटिस्रक्‌ ... तया अतिविचित्रः=अत्यद्भुतः वेषः = स्वरूपं यस्य सः सन् राज्ञः = नृपस्य कंसाभिधस्य हृदयं = चित्तं 'चित्तन्तु चेतो हृदयम् ।' अमरः । प्रवेष्टुं = प्रवेशं कर्तुम् आगतोऽस्मि = समुपस्थितोऽस्मि ॥ ५ ॥

कंसः-शापं प्रति असम्भवं स्वहृदयप्रवेशं निरूपयति—सौवर्णेत्यादिना ।

सौवर्णकान्ततरकन्दरकूटकुञ्जम्—सुवर्णस्येदं सौवर्णम्=कनकमयम् अतिशयेन कान्तमिति कान्ततरम् = अतिसुन्दरं कन्दराश्च = गुहाश्च कूटाश्च = शिखराणि च कुञ्जाश्च = लतागृहाणि च योः पक्षत्योः एषां समाहारद्वन्द्वः सौवर्णं कान्ततरं कन्दरकूटकुञ्जं यस्य तं मेरुं=सुमेरुपर्वतम् वायसस्य = काकस्य पक्षाभ्यां = पर्णाभ्यां वातः = वायुः न प्रकम्पयति = न प्रचालयति । समकरक्षुभितोर्मिमालं—मकरेण

कंस के हृदय में प्रवेश करने के लिए नरमुण्ड की माला से युक्त बड़ा विचित्र वेष वाला है, चाण्डाल का भयंकर रूप धारण करके श्मशान के बीच से मैं आया हूँ ॥

राजा—असम्भव वस्तु की प्रार्थना करते हो ।

कनकमय अत्यन्त सुन्दर गुफाओं से, शिखरों से और लता गृहों से युक्त सुमेरु पर्वत को कौए के पंख की हवा नहीं हिला सकती । अरे । मकर से मथित तरंग समूहों वाले जलनिधि को जो तुम हाथ की अंजलि से पीना चाहते हो (अतः) हास्यास्पद हो ॥ ६ ॥

शापः—काले ज्ञास्यसि ।

राजा—हं, कथं सहसैव नष्टः । यावदहमपि शयनमुपगम्य नयनव्याक्षेपं करोमि । (स्वपिति ।)

शापः—अये प्रसुप्तः । अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिङ्गलाक्षि ! तदागम्यतामभ्यन्तरं प्रविशामः ।

सर्वाः—एवं होदु । [एवं भवतु ।]

(प्रविश्य)

राजश्रीः—न खलु प्रवेष्टव्यम् ।

शापः—का भवती ।

श्रीः—किं मां न जानीषे । अहं खल्वस्य लक्ष्मीः ।

शापः—एवम् । राजश्रीः ! अपक्रामतु भवती । इदं खलु मम गृहं संवृत्तम् ।

सहितं = सम्राहं क्षुभिता = क्षोभं प्राप्ता ऊर्मीणां = वीचीनां माला = श्रेणिः यस्मिन् सः तं समुद्रं = रत्नाकरं कराञ्जलिना—करस्य=हस्तस्य, अञ्जलिः = अञ्जलिपुटं तेन यः = त्वं शापः पातुम् = पानं कर्तुम् इच्छसि = वाञ्छसि ततः हास्योऽसि = उपहासपात्रमसि । अत्र तुल्ययोगितालङ्कारः ॥ ६ ॥

शाप—समय पर जान जाओगे ।

राजा—हाय ! कैसे एकदम नष्ट हो गया । तो मैं भी शैय्या पर जाकर आँखें मूंद लूँ । (सोता है ।)

शाप—अरे ! सो गया । अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिंगलाक्षि ! आओ, आओ अन्दर प्रवेश करें ।

सब—ऐसा ही हो ।

(प्रवेश करके)

राजश्री—अन्दर मत जाओ ।

शाप—आप कौन हैं ?

राजश्री—क्या मुझे नहीं जानते ? मैं इनकी लक्ष्मी हूँ ।

शाप—अच्छा, आप राजश्री हैं ! आप चली जाएँ । अब यह मेरा घर हो गया है ।

श्रीः—हं,

लङ्कोपमं मम गृहं न विचिन्त्य मूढ !
कस्याश्रयाद् विशसि मामवधूय रात्रौ ।
किं भाषितेन बहुना न च शक्यमेतद्
द्रष्टुं प्रवेष्टुमिह तेऽद्य मयाऽभिजुष्टम् ॥ ७ ॥

शापः—भगवति पद्मालये ! अपक्रामतु किल कंसशरीरात् । विष्णुराज्ञापयति ।

श्रीः—कथं विष्णुराज्ञापयतीति भोः ! कष्टम् ।

न चाहं चिरसंवासात् त्यक्तुं शक्नोमि पार्थिवम् ।

राजश्रीः शापाभिमानिनं देवं राजभवनप्रवेशं वारयति='लङ्कोपमम्' इत्यादिना ।

(हे) मूढ=रे अज्ञ न विचिन्त्य किमपि विचारं न कृत्वा रात्रौ = निशि-माम् = राजश्रियम् अवधूय = तिरस्कृत्य लङ्कोपमं = लङ्कासदृशं मम = राजश्रियः गृहं = दुर्गं कस्य = बलिनः पुरुषस्य आश्रयात् = संश्रयात् विशसि=प्रवेशं करोषि । बहुना = भृशं भाषितेन=वचसा 'भाषितं लपितं वचः ।' अमरः । किं = व्यर्थं मया-भिजुष्टम्—मया = राजश्रिया अभिजुष्टं = सेवितम् एतद् गृहम् अद्य = इदानीं ते= तव इह = भवने प्रवेष्टुं = प्रवेशं कर्तुं (दूरं) द्रष्टुं = प्रेक्षितुमपि न च शक्यम् = असमर्थोऽसीति भावः ॥ ७ ॥

राजश्रीः विष्णोराज्ञां लब्ध्वा कंसशरीरत्यागे सन्तापं दर्शयति—नचाहमिति ।

चिरसंवासात्—चिरं = बहुकालं संवासः स्थितिः चिरसंवासस्तस्मात् अहम्= राजश्रीः पार्थिवं = नृपं त्यक्तुं = विहातुं न च शक्नोमि = एतत्कर्तुं न पारयामि ।

श्री—अच्छा, अरे मूर्ख ! विना विचारे रात्रि में मेरा तिरस्कार करके लङ्का के समान मेरे भवन में किस (बलवान पुरुष) की आज्ञा से प्रवेश कर रहा है ? अधिक बोलने से क्या ? मेरे द्वारा सेवित इस भवन में आज तुम्हारा प्रवेश करना तो दूर, इसे देख भी नहीं सकते ॥ ७ ॥

शाप—भगवती लक्ष्मी ! कंस के शरीर से आप निकल जाएं । विष्णु की यह आज्ञा है ।

श्री—क्या विष्णु की ऐसी आज्ञा है ? अरे, बड़ा कष्ट है । इस बलवान और

बलवान् गुणसङ्ग्राही दृढं तपति मामयम् ॥ ८ ॥

भवतु । अनतिक्रमणीया विष्णोराज्ञा । तस्मादहमपि विष्णुसकाशमेव यास्यामि । (निष्क्रान्ता ।)

शापः—अपक्रान्ता राजश्रीः । हन्तेदानीमिदमस्माकमावासः संवृत्तः । अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिङ्गलाक्षि ! अभ्यन्तरं प्रविश्य स्वजातिसदृशी क्रीडा क्रियताम् ।

सर्वाः—अज्जप्पहुदि अवणीदधम्मचारित्तो होहि । [अद्यप्रभृत्यपनीतधर्मचारित्रो भव ।]

शापः—

परिष्वजामि गाढं त्वां नित्याधर्मपरायणम् ।

अयं=कंसः गुणसंग्राही—गुणानां = शौर्यादि गुणानां संग्राही = संग्रहकर्ता यावत् बलवान् = बलशाली अतः तस्य अयं त्यागः माम् = राजलक्ष्मीं दृढं = भृशं तपति = संतापयतीतिभावः ॥ ८ ॥

शापः कंसमालिङ्ग्य स्वकार्यं साधयति—ब्रवीति च परिष्वजामीति । नित्याधर्मपरायणं—नित्यं = सर्वदा अहर्निशम् अधर्मेषु = अनाचारेषु परायणं = तत्परं संलग्नमिति यावत् त्वां = भवन्तं कंसं गाढं=दृढतरं परिष्वजामि=आलिङ्गनं करोमि ।

गुणग्राही राजा को, इतने अधिक दिन निवास करने के पश्चात् सहसा छोड़ना मुझे बहुत ही सन्ताप दे रहा है ॥ ८ ॥

अच्छा, विष्णु की आज्ञा अनुल्लंघनीय है। अतएव मैं भी विष्णु के पास जाऊंगी । (चली जाती है ।)

शाप—राजश्री चली गयी । अहा । अब यह हम लोगों का घर हो गया । अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिङ्गलाक्षि ! अन्दर प्रवेश करके अपनी जाति गुण के अनुसार लीला करो ।

सब—आज से लेकर तुम धर्माचार से शून्य हो जाओ ।

शाप—मैं सर्वदा पाप कर्मों में निरत रहने वाले का दृढ़तापूर्वक आलिंगन

प्राप्नोमि मुनिशापस्त्वामचिरान्नाशमेष्यसि ॥ ९ ॥

(अन्तर्हितः ।)

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

राजा—ह !

प्रतिहारी—भट्टा ! जसोधरा खु अहं । [भर्तः ! यशोधरा खल्वहम् ।]

राजा—यशोधरे ! किं त्वया मातङ्गीजनप्रवेशो न दृष्टः ।

प्रतिहारी—हं मादङ्गिजणत्ति । णिच्चं भट्टिपादमूले वत्तमाणस्स व जणस्स इह प्पवेसो दुल्लहो, कि उण मादङ्गिजणस्स । [हं मातङ्गीजन इति, नित्यं भर्तृपादमूले वर्तमानस्यैव जनस्येह प्रवेशो दुर्लभः, किं पुनर्मातङ्गीजनस्य ।]

राजा—किं स्वप्नो नु मयानुभूतः । यशोधरे ! गच्छ । बालाकिः काञ्चुकीयः प्रवेश्यताम् ।

(अहम्) मुनिशापः—मुनेः = मधूकस्य शापः = वज्रबाहुर्नामास्मीति शेषः । त्वां= कं? प्राप्नोमि = धारयामि त्वम् अचिरात् = शीघ्रमेव नाशं = निधनं यास्यसि= गमिष्यसि ॥ ९ ॥

करता हूं । मुनि का शाप मैं, तुम्हें पकड़ता हूं । तुम शीघ्र ही नाश को प्राप्त होगे ॥ ९ ॥

(विलीन हो जाता है ।)

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—स्वामी की जय हो ।

राजा—हम, कौन है ?

प्रतिहारी—स्वामिन् ! मैं यशोधरा हूँ ।

राजा—यशोधरे ! क्या तुमने चण्डालिनियों को प्रवेश करते नहीं देखा ?

प्रतिहारी—हैं ! चाण्डालिनियां ! जो नित्य स्वामी के चरणों में बने रहते हैं, उन्हीं का यहाँ प्रवेश दुर्लभ है फिर चण्डालिनियों की क्या बात ।

राजा—क्या मैंने स्वप्न देखा ? यशोधरे ! जाओ । कञ्चुकी बालाकि को बुलाओ ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता ।) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

राजा—आर्य बालाके ! प्रष्टव्यौ सांवत्सरिकपुरोहितौ—अद्य रात्रौ वातोद्भ्रामभूमिकम्पोल्कापाता दैवतप्रतिमाश्च प्रतिभासिताः किमर्थमिति ।

काञ्चुकीयः—महाराज ! सांवत्सरिकपुरोहितौ विज्ञापयतः ।

राजा—किमिति ।

काञ्चुकीयः—श्रूयताम् ।

भूतं नभस्तलनिवासि नरेन्द्र ! नित्यं
कार्यान्तरेण नरलोकमिह प्रपन्नम् ।

सांवत्सरिकपुरोहितयोः कथनं कञ्चुकी राजानं प्रतिस्तौति भूतमित्यादिना ।

हे नरेन्द्र = नृपश्रेष्ठ ! नित्यं = सर्वदा नभस्तलनिवासिन् = नभस्तले = अन्तरिक्षे निवसति = निवासं करोति यत् तत् सम्बुद्धौ भूतं = प्राणिनं कार्यान्तरेण = विशेषकार्यवशात् इह = अस्मिन् नर लोकं = मृत्यु लोकं प्रपन्नम् = अवतीर्णं तस्य=

प्रतिहारी—जैसी स्वामी की आज्ञा । (चली जाती है ।)

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—महाराज की जय हो ।

राजा—आर्य बालाकि, ज्योतिषी और पुरोहित से पूछना चाहिए—जो आज रात में आँधी, भूकम्प, उल्कापात और देवताओं की मूर्तियाँ दिखायी दी हैं उनका क्या फल है ?

कञ्चुकी—महाराज ! ज्योतिषी और पुरोहित निवेदन करते हैं ।

राजा—क्या ?

कञ्चुकी—सुनिये—

हे राजन् ! जो सर्वदा अन्तरिक्ष में निवास करता है वह प्राणियों के विशेष कार्य से (कल्याण के लिए) इस मृत्यु लोक में उत्पन्न हुआ है । उसके प्रादुर्भाव-

आकाशदुन्दुभिरवैः समहीप्रकम्पै-
स्तस्यैष जन्मनि विशेषकरो विकारः ॥ १० ॥

राजा—

कस्मिञ्जाते सशैलेन्द्रा कम्पितेयं वसुन्धरा ।
ज्ञायतां कस्य पुत्रोऽयं किं वा जन्मप्रयोजनम् ॥ ११ ॥

इति ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । प्रसूतवती किल देवकी ।

राजा—किं प्रसूतम् ।

भूतस्य जन्मनि = प्रादुर्भावे समहीप्रकम्पैः—मह्याः पृथिव्याः प्रकम्पेन = वेपथुना सहितास्तैः आकाशदुन्दुभिरवैः—आकाशे = वियति दुन्दुभीनां = देववाद्यविशेषाणां रवैः = शब्दैः एषः = वर्तमानः विकारः = अशुभदर्शनरूपः विशेषकरः—विशेषस्य करः करोतीति करः = अधिकहानिप्रदः संजात इति शेषः ॥ १० ॥

कञ्चुकीमादिशति—कंसो नृपः 'कस्मिन् जाते'त्यादिना । कस्मिन्०—कस्मिन् = प्राणभृति जाते = प्रादुर्भूते सशैलेन्द्रा = शैलेन्द्रसहिता = सारधरा । इयं = वर्तमाना वसुन्धरा = मेदिनी कम्पिता = प्रचलिता अयं = उत्पन्नः कस्य = नरविशेषस्य पुत्रः = आत्मजः इति ज्ञायतां = बुध्यतां जन्मप्रयोजनमिति उत्पत्तिकारणं वा किम् इति ज्ञायताम् ॥ ११ ॥

के समय में पृथ्वी में कम्पन और आकाश में दुन्दुभी का वादन तथा (तुम्हें) ये अशुभ दर्शन हुए हैं ॥ १० ॥

राजा—किसी मनुष्य के जन्म पर पर्वतों के सहित यह पृथ्वी काँप उठी अतएव किस मनुष्य का यह पुत्र है और इसके जन्म का क्या प्रयोजन है ॥११॥

ऐसा ।

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा । (जाकर और पुनः प्रवेश करके) महाराज की जय हो । देवकी को प्रसव हुआ है ।

राजा—क्या पैदा हुआ ?

काञ्चुकीयः—दारिका प्रसूता ।

राजा—मा तावत् । एतानि महानिमित्तानि दारिकाप्रसूतिमात्रेण उत्पद्यन्ते ।

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु महाराजः । अनृतं नाभिहितपूर्वं मया । भवतो भृत्यवर्गपरिवृतायाः धात्र्या हस्ते दृष्टा सा ।

राजा—अथवा ब्राह्मणवचनमनृतमपि सत्यं पश्यामि । गच्छ, वसुदेवस्तावदाहूयताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

राजा—धर्मशीलः सत्यवादी वसुदेवः । अथ तु मम समीपेऽनृतं न ब्रवीति । भवतु, श्रोष्यामस्तावत् ।

(ततः प्रविशति वसुदेवः ।)

वसुदेवः—

षण्णां सुतानां समुपेत्य नाशं वहन्निदं शोककृशं शरीरम् ।

राज्ञा कंसेनाहूतो वसुदेवः स्वां दशां निरूपयति-षण्णामित्यादिना । षण्णां = षट्संख्यकानां सुतानां = पुत्राणां नाशं = निधनं समुपेत्य = लब्ध्वा इदं = पुरोवर्ति

कञ्चुकी—लड़की उत्पन्न हुई ।

राजा—ऐसा नहीं हो सकता । इतने बड़े शकुन केवल पुत्री के उत्पन्न होने पर हो सकते हैं ?

कञ्चुकी—महाराज प्रसन्न हों । मैंने कभी झूठ नहीं बोला । आपके सेवक समूह से घिरी हुई धाई के हाथ में उसे देखा गया है ।

राजा—तो सचमुच ब्राह्मण का वचन असत्य देखता हूँ । जाओ; वसुदेव को बुला लाओ ।

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(प्रस्थान)

राजा—वसुदेव धर्मशील और सत्य बोलने वाले हैं वे मेरे सम्मुख झूठ कभी न बोलेंगे । अच्छा, तो हम लोग सुनेंगे ।

(वसुदेव का प्रवेश)

वसुदेव—छः पुत्रों के निधन होने से इस शोक से जर्जरित शरीर को धारण

आहूयमानोऽकरुणेन राज्ञा गच्छाम्यहं भृत्य इवास्वतन्त्रः ॥ १२ ॥

भोः ! एवंविधा लोकवृत्तिः ।

स्मरतापि भयं राजा भयं न स्मरतापि वा ।
उभाभ्यामपि गन्तव्यो भयाद्प्यभयादपि ॥ १३ ॥

(उपसृत्य) शौरसेनीमातः ! आस्यते ।

राजा—यादवीमातः ! आस्यताम् ।

वसुदेवः—बाढम् । (उपविश्य) शौरसेनीमातः ! किमर्थं वयमाहूताः ।

राजा—यादवीमातः ! प्रसूतवती किल देवकी ।

वसुदेवः—अथ किम् , प्रसूतवती ।

शोककृशं = शोकेन = दुःखेन कृशं = जीर्णं शरीरं = विग्रहम् वहन् = धारयन् अहं = वसुदेवः अकरुणेन = निष्कृपेण राज्ञा = नृपेण कंसेन आहूयमानः = आकार्यमाणः अस्वतन्त्रः = पराधीनः भृत्य इव = सेवक इव गच्छामि = यामि ॥ १२ ॥

वसुदेवः लोकवृत्तिं पुनर्दर्शयति—स्मरतापीति । स्मरता=स्मरणं कुर्वताऽपि वा राजा = नृपेण (क्विबन्तराजशब्दात् तृतीयान्तं पदमेतत्) न स्मरतापिवा = स्मरणमकुर्वताऽपिवा (राजा) भयं = भीतिः भयादभयादपि वा = भीतेरभीतेरपि वा उभाभ्यामपि = हेतुद्वयाभ्यामपि गन्तव्य एव = गमनीय एव ॥ १३ ॥

करता हुआ मैं क्रूर राजा कंस के बुलाने पर परतन्त्र सेवक की भाँति जा रहा हूँ ॥ १२ ॥

अरे ! ऐसी ही संसार की गति है ।

राजा के स्मरण करने पर भी और न स्मरण करने पर भी भय ही है अतएव चाहे भय हो या अभय दोनों स्थितियों में मुझे जाना ही है ॥ १३ ॥

(समीप जाकर) शौरसेनी पुत्र मैं उपस्थित हूँ ।

राजा—यादवीपुत्र ! बैठ जाओ ।

वसुदेव—अच्छा । (बैठकर) शौरसेनी पुत्र हमें किसलिए बुलाया है ।

राजा—यादवीपुत्र ! देवकी को बच्चा पैदा हुआ है ?

वसुदेव—हाँ, उत्पन्न हुआ है ।

राजा—किं प्रसूतम् ।

वसुदेवः—(आत्मगतम्) मयापि नामानृतं वक्तव्यं भविष्यति । अथवा कुमाररक्षणार्थमनृतमपि सत्यं पश्यामि । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् ! (प्रकाशम्) दारिका प्रसूता तया ।

राजा—

दारिका वा कुमारो वा हन्तव्यः सर्वथा मया ।
दैवं पुरुषकारेण वञ्चयिष्याम्यहं ध्रुवम् ॥ १४ ॥

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु भट्टा । अम्हाअं भट्टिणी विण्णवेदि-दारिअत्ति बालेत्ति अ करीअदु किल महाराएण अणुक्कोसो । [जयतु भर्ता । अस्माकं भट्टिनी विज्ञापयति-दारिकेति बालेति च क्रियतां किल महाराजेनानुक्रोशः ।]

नृपतिकंसः वसुदेवात् दारिकाजननं श्रुत्वा स्वाभिप्रायं प्रदर्शयति—दारिकेति ।

दारिका वा = कन्यका वा कुमारो वा=बालको वा (योऽपि कोऽपि वा भवेत्) मया कंसेन सर्वथा = सर्वप्रकारेण हन्तव्यः = हननीयः अहं = नृपः पुरुषकारेण = पुरुषार्थेन दैवं = भागधेयं 'दैवं दिष्टं भागधेयम्' इत्यमरः । ध्रुवं = नूनं वञ्चयिष्यामि= प्रतारयिष्यामि पुरुषार्थेन भाग्यं जेष्यामीति भावः ॥ १४ ॥

राजा—क्या उत्पन्न हुआ है ?

वसुदेव—(स्वगत) मुझे भी झूठ बोलना पड़ेगा । अथवा कुमारकी रक्षा के लिए झूठ भी सत्य समझता हूँ । अब क्या करना चाहिए ? अच्छा, समझा । (प्रकट) उसने पुत्री उत्पन्न की है या कन्या ।

राजा—लड़की हो अथवा लड़का मुझे तो उसे सर्वथा मारना ही चाहिए । मैं अपने पुरुषार्थ से अवश्य ही विधाता को ठगूँगा ॥ १४ ॥

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—स्वामी की जय हो । हम लोगों की स्वामिनी निवेदन करती हैं कि इस बार लड़की है अतः महाराज (उस पर) दया करें ।

वसुदेवः—शौरसेनीमातः ! क्रियतां तपस्विन्या देवक्या वाक्यम्। दारिकासु स्त्रीणामधिकतरः स्नेहो भवति।

राजा—किं भवान् स्मरति समयम्।

मधूकस्य ऋषेः शापं श्रुत्वा मे समयस्तदा।
देवक्या धारितान् गर्भान् दास्यामीति त्वया कृतः॥ १५॥

वसुदेवः—समय इति। एष न व्याहरामि।

प्रतिहारी—भट्टा किं त्ति अम्हाअं भट्टिणीए णिवेदिदव्वं। [भर्तः ! किमित्यस्माकं भट्टिन्यै निवेदयितव्यम्।]

राजा—यशोधरे ! उच्यतां देवक्याः-न युक्तमिदानीं निर्बन्धमभिधातुम्। अन्यत् प्रियतरं करिष्यामीति।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि। [यद् भर्ताज्ञापयति।]

कंसः पुरा वसुदेवकृतं शपथं स्मारयति—मधूकस्येति। मधूकस्य = एतद् संज्ञकस्य = ऋषेः = महर्षेः शापम् = अनुक्रोशं त्वया = वसुदेवेन श्रुत्वा = आकर्ण्य तदा = तस्मिन् काले मे = मम पुरत इति शेषः देवक्या = तवभगिन्या धारितान् = उदरस्थितान् = गर्भान् = शिशून् (तुभ्यं) दास्यामि = अर्पयामि इति समयः = शपथः 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः।' अमरः। कृतः = विहितः॥१५॥

वसुदेव—शौरसेनीपुत्र ! बेचारी देवकी की प्रार्थना स्वीकार कीजिए स्त्रियों का लड़कियों में अधिक स्नेह होता है।

राजा—क्या आपको प्रतिज्ञा का स्मरण है ? मधूक ऋषि के शाप को सुनकर तुमने मेरे सम्मुख देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वालों को देने की प्रतिज्ञा की थी॥ १५॥

वसुदेव—प्रतिज्ञा ? अब कुछ नहीं बोलता।

प्रतिहारी—स्वामी ! हमें देवी देवकी से क्या निवेदन करना चाहिए ?

राजा—यशोधरे देवकी से कहो कि इस समय प्रार्थना करना उचित नहीं। दूसरे समय उनके इच्छानुसार करूँगा।

प्रतिहारी—जैसी स्वामी की आज्ञा।

राजा—यशोधरे ! एवं क्रियताम् ।

प्रतिहारी—सुहं पविसदु किल भट्टा । [सुखं प्रविशतु किल भर्ता ।]

वसुदेवः—विविक्तमिच्छता मयापि नाम परापत्यं निधनमुपनेतव्यं भवति । किन्तु खलु कुमारमेवानीय प्रयच्छामि । अथवा,

दारिकेयं मृता पूर्वं पुनरेव समुत्थिता ।
अस्य बालस्य माहात्म्यान्नैषा वधमवाप्स्यति ॥ १६ ॥

यावदहमपि देवकीं समाश्वासयामि । (निष्क्रान्तः ।)

राजा—यशोधरे ! प्रवेश्यतां सा दारिका ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति दारिकां गृहीत्वा धात्री रक्षिपुरुषाश्च ।)

सर्वे—सणिअं सणिअं अय्या । इदं मज्झमदुवालं । पविसदु अय्या । [शनैः शनैरार्या ! इदं मध्यमद्वारम् । प्रविशत्वार्या ।]

वसुदेवः दारिकासमर्पणे हेतुं प्रदर्शयति—दारिकेयमिति । इयं = वर्तमाना दारिका = कन्या पूर्वं = प्राप्तिसमये मृता = निधनीभूता पुनरेव = पश्चात् समुत्थिता = सजीवत्वं गता अतः = अतएव अस्य = एतस्य मम बालस्य = शिशोः माहात्म्यात्=प्रभावेण एषा=दारिका न बधं=न मृत्युम् अवाप्स्यति=लप्स्यते ॥१६॥

राजा—यशोधरे ! ऐसा करो ।

प्रतिहारी—स्वामिन्, सुखसे प्रवेश करें ।

वसुदेव—(आत्मगत ?) स्पष्ट बोलने के कारण मेरे द्वारा दूसरे की सन्तान की हत्या होगी । तो क्या बालक को भी लाकर दे दूँ । अथवा,

यह पुत्री पहले ही मर चुकी थी और पुनः इस बालक के प्रभाव से जीवित हो गई (अतः) यह मृत्यु को नहीं प्राप्त होगी तो मैं भी देवकी को धैर्य बँधाऊँ ।

(प्रस्थान)

राजा—यशोधरे उस बालिका को ले आओ ।

प्रतीहारी—स्वामी की जैसी आज्ञा । (जाती है)

(बालिका को लेकर दाई और रक्षा पुरुष आते हैं)

सब—धीरे-धीरे आर्या ! यह बिचला द्वार है । आर्या प्रवेश करें ।

धात्री—(प्रविश्य) जेदु भट्टा। इअं दारिआ अम्हेहि चिरप्पहुदि रक्खिदा। [जयतु भर्ता। इयं दारिकास्माभिश्चिरात् प्रभृति रक्षिता।]

राजा—अहो राजदर्शनीयेयं दारिका। मयापि नाम स्त्रीवधः कर्तव्यो भवति।

धात्री—सणिअं सणिअं भट्टा!। [शनैः शनैः भर्तः!।]

राजा—इयं कंसशिला। यावत् साहसमनुष्ठास्यामि।

अयं हि सप्तमो गर्भ ऋषिशापबलोत्थितः।
अस्मिन् नाशं गते गर्भे मम शान्तिर्भविष्यति॥ १७॥

(गृहीत्वा प्रहृत्य) अये,

एकांशः पतितो भूमावेकांशो दिवमुन्नतः।
मां निहन्तुमिहोद्भूतः करैः शस्त्रसमुज्ज्वलैः॥ १८॥

कंसः दारिकाहनने बीजं प्रदर्शयति—अयं हीति। हि = यतः ऋषिशाप०—ऋषेः = महर्षेः शापः = आक्रोशः। 'शापाक्रोशौ—दुरेषणा।' अमरः। तस्य = बलं = पराक्रमः तेन उत्थितः = उत्पन्नः अयं = पुरोवर्ती सप्तमः = सप्तमसंख्याकः गर्भः = गर्भान्निःसृता बालिका अस्तीति शेषः। अस्मिन् गर्भे दारिकारूपे नाशं गते = निधनं प्राप्ते सति मम = कंसस्य शान्तिर्भविष्यति=प्रियता भविष्यति॥१७॥

कन्याप्रहारं निरूपयति—कंसः—कन्यकायाः = दारिकायाः एकांशः = एको भागः भूमौ=पृथिव्यां पतितः=निपतितः एकांशः=द्वितीयो भागः दिवम्=अन्तरिक्षम्

धात्री—(प्रवेश करके)—स्वामी की जय हो। मैंने इस बालिका की बड़ी रक्षा की है।

राजा—अरे! यह कुमारी तो राजाओं के दर्शन योग्य है। मैं भी स्त्री जाति की हत्या करूँगा।

धात्री—स्वामिन्, धीरे-धीरे।

राजा—यह कंस शिला है, तो अब मैं साहस करता हूँ। यह ऋषि के शाप से पैदा हुआ सातवाँ गर्भ है इस गर्भ के नाश होनेपर मुझे शान्ति हो जाएगी॥१७॥

(पकड़कर, प्रहार करके) अरे, इसका एक भाग भूमि पर पड़ा है और दूसरा आकाश में। चमकते हुए शस्त्रों से युक्त हाथ से मुझे मारने के लिए यह उत्पन्न हुई है॥ १८॥

अये इयमिदानीं

तीक्ष्णाग्रं शूलमालम्ब्य रौद्रवेषेण जृम्भते ।
विनाशकाले सम्प्राप्ते कालरात्रिरिवोत्थिता ॥ १९ ॥

(ततः प्रविशति कात्यायनी सपरिवारा ।)

कात्यायनी—

शुम्भं निशुम्भं महिषं च हत्वा कृत्वा सुरांस्तान् हतशत्रुपक्षान् ।
अहं प्रसूता वसुदेववंशे कात्यायनी कंसकुलक्षयाय ॥ २० ॥

उन्नतः = ऊर्ध्वं गतः शस्त्र० शस्त्रेण=आयुधेन समुज्ज्वलाः=शोभमानाः तैः करैः= बाहुभिः मां = कंसं निहन्तुं = मारयितुम् इह = पृथिव्याम् उद्भूतः=उत्पन्नः ॥१८॥

कंसः इदानीं दारिकां विशिनष्टि-तीक्ष्णाग्रमिति—तीक्ष्णं = निशातम् अग्रम् = अग्रभागो यस्य स तम् शूलं = त्रिशूलम् आलम्ब्य = गृहीत्वा रौद्रवेषेण = भयङ्कर-रूपेण जृम्भते = हुंकारं करोति विनाशकाले = संहारसमये सम्प्राप्ते = आगते सति कालरात्रिरिव = कालिका इव उत्थिता=उत्पन्ना ॥ १९ ॥

कात्यायनी निजागमनकारणं प्रदर्शयति—शुम्भमिति । शुम्भम् = एतन्नाम-कम् असुरं हत्वा = विनाश्य तान् सुरान् = असुरपीडितान् देवान् हतशत्रु-पक्षान्—हताः = विनष्टाः शत्रुपक्षाः = रिपुसंघाः येषां ते तान् कृत्वा=विधाय कंस-कुलक्षयाय—कंसस्य नृपस्य कुलं = वंशः तस्य क्षयः = विनाशः तस्मै अहं कात्या-यनी = एतन्नाम्नी देवी वसुदेववंशे = वसुदेवकुले प्रसूता = समुत्पन्ना ॥ २० ॥

अरे ! यह तो इस समय—

तेज फलवाले त्रिशूल को लेकर भयंकर रूप (धारण) करके हुंकार करती है। इस संहार के समय में कालिका के समान उपस्थित हो गई है ॥ १९ ॥

(कात्यायनी का परिवार के सहित प्रवेश)

कात्यायनी—शुम्भ निशुम्भ और महिषासुर को मार कर पीड़ित देवताओं के शत्रुओं को नष्ट करके मैं कात्यायनी कंस के वंश के नाश के लिए वसुदेव के कुल में उत्पन्न हुई हूँ ॥ २० ॥

कुण्डोदरः—

कुण्डोदरोऽहमजितो रणचण्डकर्मा
देव्याः प्रसूतिजनितोग्रमहानिनादः ।
शीघ्रं प्रयामि गगनादवनिं विशालां
दृप्तान् जिघांसुरसुरानतिवीर्यदर्पान् ॥ २१ ॥

शूलः—

शूलोऽस्मि भूतमिह भूमितले प्रपन्नो
देव्याः प्रसादजनितोज्ज्वलचारुवेषः ।

कुण्डोदरो नाम कश्चिद्देव्याः सेवकः पृथिव्यां स्वागमनकारणं निर्वक्ति—कुण्डोदर इति ।

कुण्डो० अहं कुण्डोदरः = एतन्नामा सेवकः कुण्डमिव उदरं यस्य रणचण्डकर्मा—रणे = संग्रामे चण्डम् = उग्रं कर्म = कृत्यं यस्य स अजितः = जेतुमशक्योऽस्मीति शेषः देव्याः कात्यायन्याः प्रसूतिजनितोग्रमहानिनादः—प्रसूत्या = आविर्भावेण जनितः = उत्पन्नः उग्रः = कठोरः महानिनादः = भयङ्करशब्दः यस्य सः अतिवीर्यदर्पान्—वीर्यातिशयेन दर्पः = अवलेपः येषां ते तान् दृप्तान् = गर्वितान् असुरान् = दैतेयान् 'असुरा दैत्यदैतेय० ।' अमरः । जिघांसुः = हन्तुमिच्छुः गगनात् = आकाशमण्डलात् विशालां = महतीम् अवनिं = भूमिं शीघ्रम् = आशु प्रयामि = गच्छामि ॥ २१ ॥

शूलनामा कश्चित् कात्यायन्याः सेवकः स्वागमनप्रवृत्तिं निगमयति—शूलोऽस्मीति ।

देव्याः = कात्यायन्याः प्रसादजनितोज्ज्वलचारुवेषः—प्रसादेन = कृपया

कुण्डोदर—मैं कुण्डोदर नामक सेवक लड़ाई में प्रचण्ड कर्म करने वाला तथा अपराजेय हूँ। मैं देवी की आज्ञा से भयङ्कर गर्जन करता हूँ। मैं अन्तरिक्ष से विशाल पृथ्वी पर, अपने बल पर घमण्ड करनेवाले गर्वित दैत्यों को मारने के लिए शीघ्र ही जा रहा हूँ ॥ २१ ॥

शूल—देवी के प्रसाद से मुझे रमणीय उज्वल वेश प्राप्त हुआ है और मैं शूल

कंसं निहत्य समरे परिकर्षयामि
तं पादपं जलनिधेरिव कार्त्तिकेयः ॥ २२ ॥

नीलः—

अहं हि नीलः कलहस्य कर्ता सङ्ग्रामशूरो नपराङ्मुखश्च ।
निहन्मि कंसं युधि दुर्विनीतं क्रौञ्चं यथा शक्तिधरः प्रकृष्टः ॥ २३ ॥

मनोजवः—

मनोजवो मारुततुल्यवेगो देव्यास्तु कार्यार्थमिहोपयातः ।

जनितः = उत्पन्नः उज्ज्वलः = स्वच्छः चारुः = सुन्दरः वेषः = स्वरूपं यस्य स इह= अस्मिन् भूमितले = भूतले प्रपन्नः = अवतीर्णः शूलः = एतन्नामाऽहमस्मि । कार्ति-केयः—कृत्तिकायाः अपत्यम् ॥ २२ ॥

नीलनामा कश्चित् सेवकः स्वाभिप्रायं प्रकटयति–अहमिति । अहम् हि नीलः = नीलनामा वीरोऽस्मि कलहस्य कर्ता = विग्रहस्य कारकः संग्रामशूरः—संग्रामे = आयोधने शूरः = वीरः न पराङ्मुखश्च = कदाचिदपि संग्रामात् पराङ् न कृतम् मुखं येन सः एवंभूतः दुर्विनीतं = दुराचारिणं कंसं=कंसनामानं नृपं युधि = आहवे तथा निहन्मि = हनिष्यामि यथा = येन प्रकारेण प्रकृष्टः = बलिष्ठः शक्तिधर = एतन्नामकः कुमारः 'षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः ।' अमरः । क्रौञ्चं= क्रौञ्चनामानं पर्वतं विदीर्णवान् इति शेषः । अत्रोदाहरणालङ्कारः ॥ २३ ॥

मनोजवनामा देवीभृत्यः स्वकार्यं प्रदर्शयति–मनोजव इति (अहं) मनोजवः- मनः = चित्तं इव जवः = वेगः यस्य सः = एतन्नामा मारुततुल्यवेगः मारुतः= वायुः तत्तुल्यो वेगो = गतिः यस्य स देव्याः = कात्यायन्याः कार्यार्थं = कार्यसाध-नार्थम् इह = अस्मिन् स्थाने उपयातः = प्राप्तः यथा = येन प्रकारेण बह्निः = अग्निः नलानां = तृणविशेषाणाम् ('नरकट' इति देशीयनाम) निलयं = विनाशं करोति

पृथ्वी तल पर अवतीर्ण हुआ हूँ । मैं युद्ध में कंस को मारकर वैसे ही घसीटूँगा जैसे कार्तिकेय ने समुद्र के वृक्ष को नष्ट किया था ॥ २२ ॥

नील—मैं नील नामक (योद्धा) कलह उपस्थित करने वाला, संग्राम में शूर और कभी युद्धभूमि से पलायन करने वाला नहीं हूँ । मैं दुराचारी कंस को युद्ध में मारूँगा जैसे कुमार कार्तिकेय ने क्रौंच नामक पर्वत को विदीर्ण किया था ॥२३॥

मनोजव—मैं वायु के समान तीव्रगामी मनोजव कात्यायनी देवी की कार्य-

करोमि सङ्ग्रामशिरःसु दैत्यान् वह्निर्नलानां निलयं यथैव ॥ २४ ॥

कात्यायनी—कुण्डोदर ! शङ्कुकर्ण ! महानील ! मनोजव ! तदागम्यताम् । भगवतो विष्णोर्बालचरितमनुभवितुं गोपालकवेषप्रच्छन्ना घोषमेवावतरिष्यामः ।

सर्वे—यदाज्ञापयति भगवती । (निष्क्रान्ता सपरिवारा कात्यायनी ।)

राजा—अये प्रभाता रजनी

अतः प्रविश्य शान्त्यर्थं शान्तिकर्मोचितं गृहम् ।
करोमि विपुलां शान्तिं मम शान्तिर्भविष्यति ॥ २५ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

द्वितीयोऽङ्कः ।

तथैव अहं संग्रामशिरसि = रणाङ्गणे दैत्यान् = असुरान् करोमि = सम्पादयामि विनष्टानिति शेषः ॥ २४ ॥

राजा च प्रभाते शान्तिं चिकीर्षति—अत इति । अतः = दुश्शकुनदर्शनशान्त्यर्थम् = उपशमनार्थं शान्तिकर्मोचितं—शान्तिकर्मसु उचितं = योग्यं गृहं = भवनं प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा विपुलां=महतीं शान्तिं=शमं करोमि=विदधामि (येन मम कंसस्य शान्तिः=मनश्शान्तिः भविष्यति=यास्यति ॥ २५ ॥

सिद्धि के लिए यहाँ आया हूँ जैसे अग्नि तृण (नरकट) के समूह को नष्ट कर देती है उसी प्रकार मैं संग्राम में दैत्यों का विनाश करूँगा ॥ २४ ॥

कात्यायनी—कुण्डोदर, शंकुकर्ण, महानील, मनोजव, इधर आओ। भगवान् विष्णु के बालचरित्र का रसास्वादन करने के लिये ग्वालों के वेष में अपने को छिपा कर हम लोग इसी गोप-बस्ती में अवतीर्ण हों।

सब—भगवती की जैसी आज्ञा। (सपरिवार कात्यायनी का प्रस्थान)

राजा—अरे ! सबेरा हो गया।

मैं दुःशकुन की शान्ति के लिए शान्तिकर्म करने के लिए उचित भवन में प्रवेश करता हूँ। मैं खूब शान्ति-पाठ करता हूँ जिससे मेरे अनिष्ट की शान्ति होगी ॥ २५ ॥　(सबका प्रस्थान)

द्वितीय अंक समाप्त ।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः ।)

वृद्धगोपालकः—भो मेघदिण्ण ! क्खु, वषभदिण्ण ! क्खु, कुम्भदिण्ण ! क्खु, घोषदिण्ण ! क्खु पकालेथ पकालेथ गोधणं। एदेष्षिं वुन्दावणे पकामं पाणीअं पादूणं हुम्भारवं करन्तो आअन्तु गोधणं। एषो गोवज्जहादो णिक्कमिअ परिघट्टिअवम्मीअमूलो भुजङ्गेहि कुवण्णेहिं णीलुप्पलादामेहि षिंगलग्गेहि विअ वषभो षोभदि। अण्णो वि एषो वषभो उषिदप्पषारिअपुच्छो णिकुञ्चिअजाणू षषीव धवलङ्गो अग्गविषाणेहि महीं उव्वहन्तो विअ षोभदि। जाव दाणि दामअं षद्दावआमि। अले दामअ ! भअवदीणं षुथले ओदालिअ षहवच्छाणं तुवं पि आअच्छ। [भो मेघदत्त ! खलु, वृषभदत्त ! खलु, कुम्भदत्त ! खलु, घोषदत्त ! खलु, प्रकालयत प्रकालयत गोधनम्। एतस्मिन् वृन्दावने प्रकामं पानीयं पीत्वा हुम्भारवं कुर्वदायतु गोधनम्। एष गोव्रजान् (?) निष्क्रम्य परिघट्टितवल्मीकमूलो भुजङ्गैः कुवर्णैः नीलोत्पलदामभिः शृङ्गलग्नैरिव वृषभः शोभते। अन्योऽप्येष वृषभ उच्छ्रितप्रसारितपुच्छो निकुञ्चितजानुः शशीव धवलाङ्गोऽग्रविषाणाभ्यां महीमुद्वहन्निव शोभते। यावदिदानीं दामकं शब्दयामि। अरे दामक ! भगवतीः सुस्थलेऽवतार्य सहवत्सास्त्वमप्यागच्छ।]

(वृद्ध गोपालक का प्रवेश)

वृद्ध गोपालक—हे मेघदत्त, वृषभदत्त, कुम्भदत्त और घोषदत्त ! चरने दो, इन गौओं को पेट भर चरने दो। इस वृन्दावन में खूब पानी पीकर हुँकार करती हुई गौओं को आने दो। यह गौओं के झुण्ड से आगे बढ़ता हुआ, वल्मीक को जड़ से खोद डालने के कारण काले लिपटे हुए भुजंगों की भाँति नीले कमल की माला से युक्त सींगों वाला वृषभ शोभित हो रहा है और यह दूसरा वृषभ भी पूँछ को सिकोड़ता और फैलाता (हिलाता) हुआ, जंघाओं को सिकोड़ता हुआ चन्द्रमा की भाँति शुभ्र सींग के अगले भाग से पृथ्वी को धारण करता हुआ सा शोभित हो रहा है; तो मैं दामक को बुलाता हूँ। ओ दामक ! सूखे रास्ते से उतार कर बछड़ों सहित भगवती गौओं को इधर लाओ।

(ततः प्रविशति दामकः ।)

दामकः—अहो महन्तं तिणजालं षामिणो णन्दगोवष्ष । षुदजणणदिणादो आलहिअ अहिअदलं आणन्दुब्भुदं वड्ढइ । भोदु, इह चिट्ठदु गोधणं, जाव मादुलं उवषप्पिष्षं । (उपसृत्य) मादुल ! वन्दामि । [अहो महत् तृणजालं स्वामिनो नन्दगोपस्य । सुतजननदिनादारभ्याधिकतरमानन्दाद्भुतं वर्धते । भवतु, इह तिष्ठतु गोधनं, यावन्मातुलमुपसर्प्स्यामि । मातुल ! वन्दे ।]

वृद्धगोपालकः—षन्ती होदु षन्ती होदु अम्हाणं गोधणष्ष अ । [शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवत्वस्माकं गोधनस्य च ।]

दामकः—मादुल ! जदप्पहुदि नन्दगोवपुत्ते पषूदे, तदप्पहुदि अम्हाणं गोधणं वज्जिअरोअं षंवुत्तं । ण (णं ?) षव्वाणं गोवजणाणं पीदी वड्ढइ । अण्णं च, खादे खादे मूलाणि, फलाणि गुम्हे गुम्हे । मधु केत्तिअं दुघ्घदि क्खीरं तत्तअं एव्व घिदं । [मातुल ! यदाप्रभृति नन्दगोपपुत्रः प्रसूतः, तदाप्रभृत्यस्माकं गोधनं वर्जितरोगं संवृत्तम् । ननु सर्वेषां गोपजनानां प्रीतिर्वर्धते, अन्यच्च, खाते खाते मूलानि, फलानि गुल्मे गुल्मे । मधु कियद् दुह्यते क्षीरं तावद् एव घृतम् ।]

वृद्धगोपालकः—अण्णं च इदं अच्छलिअं । दषरत्तप्पपूदे णन्दगोव-

(दामक का प्रवेश)

दामक—स्वामी नन्दगोप का यहाँ पर्याप्त घास है । पुत्र-जन्म के बाद से यहाँ विचित्र आनन्द छाया हुआ है । अच्छा, गौओं को यहीं रोक दूँ । मैं मामा के पास जाऊँगा । (पास जाकर) मामा ! नमस्कार ।

वृद्ध गोपालक—हमारा और हमारी गौओं का कल्याण हो ।

दामक—मामा जब से नन्दगोप को पुत्र हुआ है तब से हम लोगों का गोधन नीरोग हो गया है, सभी गोप वृन्दों में परस्पर प्रेम बढ़ रहा है । गढ़ों में मूल, लताओं में फल लग गए हैं । कितना मधु है, दूध को दुहते ही ऊपर मक्खन आ जाता है ।

वृद्ध गोपालक—और भी अनेक आश्चर्य हैं । दस दिन का ही जब नन्दगोप-

वुत्ते पूतणा णाम दाणवी विषषम्पूरिदत्थणा णन्दगोवीए रूवं गह्निअ आअदा। तदो ताए दालअं गह्निअ तष्ष मुहे त्थणं पक्खित्तं। तदो तं विजाणिअ षुविदा पाडिदा चम्मवषेषा दाणवी भविअ तत्तो एव्व मुदा। तदो माषमत्ते णन्दगोववुत्ते षअडो णाम दाणवो षअडवेषं गह्निअ आअदो। तं पि जाणिअ एकपादप्पहारेण चुण्णीकिदो षो वि दाणवो भविअ तत्तो एव्व मुदो। तदो माषपरिवुत्ते नन्दगोववुत्ते एकष्षिं गेहे गच्छिअ खीरं पिबइ, अण्णष्षिं गेहे गच्छिअ दधिं भक्खइ, एकष्षिं गेहे गच्छिअ णवणीदं गिलदि, अण्णष्षिं गेहे गच्छिअ पाअसं भुञ्जइ, अपरष्षिं गेहे गच्छिअ तक्कघटं पलोअदि। तदो लुट्ठाहि गोवजुवदीहि णन्दगोवीए उत्तं। तदो लुट्ठाए णन्दगोवीए दामं गह्निअ तष्ष मज्झे बन्धिअ षेषं उलूहले बज्झं। तदो तं पि उलूहलं आघट्टअन्तं पेक्खिअ जमलज्जुणे णाम दाणवे णिक्खित्तं। तदो दुवे एक्कीभूदे। तेषं अन्तलेण गच्छन्तेण णन्दगोववुत्तेण आघट्टअन्तेण षमूलविडवं चुण्णीकिदे ते वि दाणवे भविअ तत्तो एव्व मुदे। तदो गोवजणेहि उत्तं महाबलपलक्कमो अज्जप्पहुदि भट्टिदामोदलो णाम होदु त्ति। तदो आहावणप्पहावणमत्ते

कुमार था तो विष से पूर्ण स्तनों वाली पूतना नामक राक्षसी नन्दगोपी (यशोदा) का वेष बनाकर आ गई। उसने कुमार को लेकर उसके मुख में स्तन डाल दिया। (कृष्ण ने) उसे सोई हुई जानकर पटक दिया। वह भी दानवी के रूप में आकर वहीं मर गई। एक मास में शकट नामक दानव शकट का वेष धारण करके आया। (कृष्ण ने) उस (के भी असली रूप) को जान कर एक पैर के प्रहार से ही चूर कर दिया। वह भी दानव होकर वहीं मर गया। एक महीने के बाद से नन्दगोप पुत्र एक घर में जाकर दूध पीता, दूसरे में जाकर दही खाता, तीसरे में जाकर मक्खन खाता, इतर में जाकर खीर खाता और अन्येतर में जाकर मट्ठा बिखराता है। तो रुष्ट गोपयुवतियों ने नन्दगोपी से (सब कुछ) कहा। क्रुद्ध नन्दगोपी ने रस्सी लेकर (एक छोर से) उसकी कमर बांध कर शेष को ओखली में बाँध दिया। उसने ओखली को घसीटते हुए यमल और अर्जुन नामक दो दानवों पर फेंक दिया। तब दोनों एक हो गए। तदनन्तर नन्दगोप पुत्र ने समूल विटप को उखाड़ कर चूर कर दिया और वे दोनों दानव होकर वहीं मर गए। तब गोपवृन्दों ने कहा–यह बड़ा पराक्रम किया है अतः आज से लेकर इसका नाम

णन्दगोववुत्ते पलंबो णाम दाणवो णन्दगोववेसं गह्विअ आअदो। तदो पङ्कलिषणं कण्ठे णिक्खिविअ गच्छन्तं तं विजाणिअ भट्टिणा षङ्कलिषणेण तष्ष दाणवष्ष षीषे मुट्ठिप्पहारो किदो। तेण प्पहारेण उक्खित्तचक्खू षो वि दाणवो भविअ तत्तो एव्व मुदो गोवजणेहि परिवुदो तालहलाणि गह्विदुं तालवणं गदो। तहिं तालवणे घेणुओ णाम दाणवो गद्दभवेसं गह्विअ आअदो। तदो तं पि जाणिअ मट्टिदामोदलेण तष्ष वामपादं गह्विअ उक्खिविअ पादिदाणि तालफलाणि। षो वि दाणवो भविअ तत्तो एव्व मुदो। तदो केसी णाम दाणवो तुलङ्गवेसं गह्विअ आअदो। तदो तं पि जाणिअ भट्टिदामोदलेण तष्ष मुहे कोप्परो दिण्णो। तदो तेण दुवी (?) पाडिदो तुलङ्गो। षो वि दाणवो भविअ तत्तो एव मुदो। एदाणि अण्णाणि (अ) कम्माणि किदाणि भट्टिदामोदलेण। [अन्यच्चेदमाश्चर्यम्। दशरात्रप्रसूते नन्दगोपपुत्रे पूतना नाम दानवी विषसम्पूरितस्तना नन्दगोप्या रूपं गृहीत्वागता। ततस्तया दारकं गृहीत्वा तस्य मुखे स्तनः प्रक्षिप्तः। ततस्तां विज्ञाय सुप्ता पातिता सापि दानवी भूत्वा तत एव मृता। ततो मासमात्रे नन्दगोपपुत्रे शकटो नाम दानवः शकटवेषं गृहीत्वागतः। तमपि ज्ञात्वैकपादप्रहारेण चूर्णीकृतः सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः। ततो मासपरिवृत्तो नन्दगोपपुत्र एकस्मिन् गेहे गत्वा क्षीरं पिबति, अन्यस्मिन् गेहे गत्वा दधि भक्षयति, एकस्मिन् गेहे गत्वा नवनीतं गिरति, अन्यस्मिन् गेहे गत्वा पायसं भुङ्क्ते अपरस्मिन् गेहे गत्वा तक्रघटं प्रलोकते। ततो रुष्टाभिर्गोपयुवतिभिर्नन्दगोप्यै उक्तम्। ततो रुष्टया नन्दगोप्या दाम गृहीत्वा तस्य मध्ये बद्ध्वा शेषमुलूखले बद्धम्। ततस्तदप्युलूखलमाघट्टयत् प्रेक्ष्य यमलार्जुनयोर्नाम दानव-

---

भर्तृ दामोदर होगा। जब कुमार उछलने-कूदने में चतुर हुआ तो प्रलम्ब नामक दानव नन्दगोप का वेष धारण करके आया। संकर्षण को अपने कंठ पर लेकर जाते हुए उसे जानकर भाई संकर्षण ने उस दानव के सिर पर मुक्के से प्रहार किया। उस आघात से उसके नेत्र बाहर निकल आए और वह दानव होकर वहीं मर गया। ग्वालों के साथ तालफलों को लेने तालवन में गया। उस ताल-वन में धेनुक नामक दानव गदहे का वेष धारण करके आया। स्वामी दामोदर ने उसे भी पहचान कर बाएं पैर को पकड़ कर भूमि पर दे पटका और सारे तालफल गिर

योर्निक्षिप्तम् । ततो द्वावेकीभूतौ । तयोरन्तरेण गच्छता नन्दगोपपुत्रेणाघट्टयता समूलविटपं चूर्णीकृतौ तावपि दानवौ भूत्वा तत एव मृतौ । ततो गोपजनैरुक्तं— महाबलपराक्रमोऽद्यप्रभृति भर्तृदामोदरो नाम भवतु इति । तत आधावनप्रधावनमात्रे नन्दगोपपुत्रे प्रलम्बो नाम दानवो नन्दगोपवेषं गृहीत्वागतः । ततः संकर्षणं कण्ठे निक्षिप्य गच्छन्तं तं विज्ञाय भर्त्रा संकर्षणेन तस्य दानवस्य शीर्षे मुष्टिप्रहारः कृतः । तेन प्रहारेणोत्क्षिप्तचक्षुः सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः । गोपजनैः परिवृतस्तालफलानि ग्रहीतुं तालवनं गतः । तत्र तालवने धेनुको नाम दानवो गर्दभवेषं गृहीत्वागतः । ततस्तमपि ज्ञात्वा भर्तृदामोदरेण तस्य वामपादं गृहीत्वोत्क्षिप्य पातितानि तालफलानि । सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः । ततः केशी नाम दानवः तुरङ्गवेषं गृहीत्वागतः । ततस्तमपि ज्ञात्वा भर्तृदामोदरेण तस्य मुखे कूर्परो दत्तः । ततस्तेन द्विधा पाटितस्तुरङ्गः । सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः । एतान्यन्यानि (च) कर्माणि कृतानि भर्तृदामोदरेण ।]

दामकः—मादुल ! सव्वं दाव चिट्ठदु । अज्ज भट्टिदामोदलो इमस्सिं वुन्दावणे गोवकण्णआहि सह हल्लीसअं णाम पकीलिदुं आअच्छदि । [मातुल ! सर्वं तावत् तिष्ठतु । अद्य भर्तृदामोदरोऽस्मिन् वृन्दावने गोपकन्यकाभिः सह हल्लीसकं नाम प्रक्रीडितुमागच्छति ।]

वृद्धगोपालकः—तेण हि सव्वेहि गोवजणेहि सह भट्टिदामोदलस्स हल्लीसअं पेक्खम्ह । [तेन हि सर्वैर्गोपजनैः सह भर्तृदामोदरस्य हल्लीसकं पश्यामः]

पड़े । वह भी दानव होकर वहीं मर गया, तब केशी नामक दानव घोड़े का वेश धारण करके आया । भर्तृ दामोदर ने उसे भी जानकर उसके मुख के अन्दर केहुनी डाल दिया जिससे वह घोड़ा दो टुकड़े होकर गिर पड़ा । वह भी दानव होकर वहीं मर गया । इसी तरह भर्ता दामोदर ने अनेक लीलाएँ कीं ।

दामक—मामा ! अच्छा यह सब होने दो । आज भर्ता दामोदर इस वृन्दावन में हल्लीसक नामक नृत्य गोपियों के साथ करने के लिए आएगा ।

वृद्ध गोपालक—तो मैं सभी गोपवृन्दों के साथ भर्ता दामोदर का हल्लीसक नृत्य देखूँगा ।

दामकः—जं मादुलो आणवेदि । [यद् मातुल आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेशकः ।

(प्रविश्य)

वृद्धगोपालकः—

अणुदिअमत्ते पुय्ये पणमह षव्वादलेण षीषेण ।
णिच्चं जगमादूणं गोणाणं अमिदपुण्णाणं ॥ १ ॥

अहो अम्हाणं पक्कणाणं षमिद्धी । आडोवषज्जाओ पडहरूववेसाओ वाहलिदुं गच्छामो । अम्हाअं गोवकण्णआओ ! घोषषुन्दलि ! वणमाले ! चन्दलेहे ! मिअक्खि ! आअच्छह आअच्छह षिग्घं ।

[अनुदितमात्रे सूर्ये प्रणमत सर्वादरेण शीर्षेण ।
नित्यं जगन्मातॄणां गवाममृतपूर्णानाम् ॥ १ ॥

अहो अस्माकं पक्कणानां समृद्धिः । आटोपसज्जाः पटहरूपवेषा व्याहर्तुं

वृद्धगोपालकः स्वकुटुम्बं नमस्कर्तुमुपदिशति—अनुदितेति ।

सूर्ये = दिवाकरे अनुदितमात्रे—न उदितम् अनुदितं तावत्कालम् = अनुदितमात्रं तस्मिन् सूर्योदयात् पूर्वस्मिन् काले सर्वादरेण = परमश्रद्धया शीर्षेण = मस्तकेन अमृतपूर्णानाम्—अमृतेन = दुग्धेन पूर्णाः = पूरिताः तासां जगन्मातॄणाम् = अखिलधात्रीणाम् गवां = धेनूनां नित्यम् = अहरहः प्रणमत = नमस्कारं कुरुत यूयमिति शेषः ॥ १ ॥

दामक—जैसी मामा जी आज्ञा देते हैं ।

(प्रस्थान)

प्रवेशक

(प्रवेश करके)

वृद्ध गोपालक—सूर्योदय के पहले अमृत (दुग्ध) से पूर्ण, जगत की माता गौओं को बड़े आदर के साथ सर्वदा सिर झुकाकर नमस्कार करो ॥ १ ॥

अहः हम लोगों की बस्तियां कितनी सम्पन्न हैं । खूब सज धज कर पटरूपी

गच्छामः । अस्माकं गोपकन्यकाः ! घोषसुन्दरि ! वनमाले ! चन्द्ररेखे ! मृगाक्षि ! आगच्छतागच्छत शीघ्रम् ।]

(ततः प्रविशन्ति सर्वाः ।)

सर्वाः—मादुल ! वन्दामो । [मातुल ! वन्दामहे ।]

वृद्धगोपालकः—दालिआ ! एषो भट्टा दामोदलो गोक्खीरपण्डरेण भट्टिणा षङ्कलिषणेण षह गोवालएहि अ परि वुदो गुहाणिक्खित्तो षिंहो विअ इदो एव्व आअच्छदि । [दारिकाः ! एष भर्ता दामोदरः गोक्षीर-पाण्डरेण भर्त्रा सङ्कर्षणेन सह गोपालकैश्च परिवृतः गुहानिक्षिप्तः सिंह इवेत एवागच्छति ।]

(ततः प्रविशति गोपजनपरिवृतो दामोदरः सङ्कर्षणश्च ।)

दामोदरः—(सविस्मयम्) अहो प्रकृत्या रमणीयानां गोपकन्यकानां वेषग्रहणविशेषः ।

एताः प्रफुल्लकमलोत्पलवक्त्रनेत्रा
गोपाङ्गनाः कनकचम्पकपुष्पगौराः ।

दामोदरः गोपकन्यकानां स्वरूपं वर्णयति—एता इति ।

प्रफुल्लकमलोत्पलवक्त्रनेत्राः—प्रफुल्लानां=विकचानां कमलानां = पद्मानाम् उत्पलानां = नीलकमलानामिव वक्त्राणि = मुखानि नेत्राणि = नयनानि यासां ताः,

---

वस्त्रों को धारण करके टहलने जाएँगे । हमारी गोप-कुमारिकायें घोष सुन्दरी वन-माला ! चन्द्रलेखा ! मृगाक्षि ! जल्दी आओ, जल्दी आओ ।

(सब का प्रवेश)

सब—मामा ! हम नमस्कार करती हैं ।

वृद्ध गोपालक—पुत्रियों ! यह स्वामी दामोदर गोदुग्ध की भाँति शुभ्र वर्ण वाले भाई बलराम के साथ और ग्वालों से घिरे हुए गुफा में स्थित सिंह की तरह इधर ही आ रहे हैं ।

(ग्वालों से घिरे हुए दामोदर और संकर्षण का प्रवेश)

दामोदर (आश्चर्य से)—अहा, स्वभावतः मनोमोहक गोप-कुमारिकाओं का (यह) विशेष वेष-भूषा बड़ा ही रमणीय है ।

पुष्पित कमल से मुख, कंज से नेत्र, स्वर्ण चम्पे के फूल की भाँति गोरी, रंग

नानाविरागवसना मधुरप्रलापाः
क्रीडन्ति वन्यकुसुमाकुलकेशहस्ताः ॥ २ ॥

सङ्कर्षणः—एते गोपदारकाः समागताः ।

रक्तैर्वेसुकडिण्डिमैः प्रमुदिताः केचिन्नदन्तः स्थिताः
केचित् पङ्कजपत्रनेत्रवदनाः क्रीडन्ति नानाविधम् ।
घोषे जागरिमा (?) गुरुप्रमुदिता हुम्भारशब्दाकुले
वृन्दारण्यगते समप्रमुदिता गायन्ति केचित् स्थिताः ॥३॥

कनकचम्पकपुष्पगौराः—कनकानां हाटकानां चम्पकपुष्पाणां = हेमपुष्पकाणां 'चाम्पेयश्चम्पको हेमपुष्पकः' इत्यमरः । इव गौराः=गौरवर्णाः नानाविरागवसनाः—नानाविरागं = अनेकवर्णं वसनं=वस्त्रं यासां ताः, मधुरप्रलापाः—मधुरो = मनोहरः प्रलापो = लपनं यासां ताः वन्यकुसुमाकुलकेशहस्ताः—वने भवानि—वन्यानि = आरण्यकानि कुसुमानि = पुष्पाणि तैः आकुलः व्याप्तः = केशहस्तः कचसमूहो यासां ताः एताः गोपाङ्गनाः क्रीडन्ति = विहरन्ति । उपमाऽलंकारः ॥ २ ॥

बलदेवः समागतान् गोपदारकान् विशिनष्टि—रक्तैरित्यादिना ।

केचित् = गोपशिशवः रक्तैर्वेसुकडिण्डिमैः—रक्तैः = रञ्जितैः वेसुकडिण्डिमैः= पटहैः प्रमुदिताः = प्रसन्नाः नदन्तः = नादं कुर्वन्तः स्थिताः = एकत्रीभूताः केचित् = अन्ये गोपवटवः पङ्कजपत्रनेत्रवदनाः = कमलदलनयनमुखाः नाना· विधाः = विविधप्रकारं क्रीडन्ति = विहारं कुर्वन्ति । केचित् = अपरे गोपशिशवः घोषे = आभीरपल्ल्यां 'घोष आभीरपल्ली स्यात्' इत्यमरः । जागरिमाः = विनिद्राः गुरुप्रमुदिताः = बह्वानन्दिताः हुम्भारशब्दाकुले—हुङ्कारशब्दः =

बिरंगे वस्त्रों में, मनोहर बातें करती हुई वन के पुष्पों की भाँति उलझे हुए केश को हाथ से पकड़े हुए ये (गोपकन्याएँ) बिहार कर रही हैं ॥ २ ॥

संकर्षण—ये गोपकुमार आ गये। कुछ (गोपकुमार) रंगीन नगाड़ों के साथ प्रसन्न होकर नाच रहे हैं। कुछ लोग (खुश होकर) शोर कर रहे हैं। कुछ कमलदल की भाँति नेत्र और मुख वाले नाना प्रकार से खेल रहे हैं। (संपूण) गाँव में जागरण है तथा कुछ लोग हर्षोल्लासके हुंकार से व्याप्त वृन्दावन में प्रसन्न होकर गा रहे हैं ॥ ३ ॥

वृद्धगोपालकः—आम भट्टा ! षव्वा षण्णद्धा आअदा । [आम भर्तः ! सर्वे सन्नद्धा आगताः !]

दामकः—जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

सङ्कर्षणः—दामक ! सर्वे गोपदारकाः समागताः ।

दामकः—आम भट्टा ! षव्वे षण्णद्धा आअदा । [आम भर्तः ! सर्वे सन्नद्धा आगताः ।]

दामोदरः—घोषसुन्दरि ! वनमाले ! चन्द्ररेखे । मृगाक्षि ! घोषवासस्यानुरूपोऽयं हल्लीसकनृत्तबन्ध उपयुज्यताम् ।

सर्वाः—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

सङ्कर्षणः—दामक ! मेघनाद ! वाद्यन्तामातोद्यानि ।

उभौ—भट्टा ! तह । [भर्तः ! तथा ।]

वृद्धगोपालकः—भट्टा ! तुम्हे हल्लीसअं पकीलन्ति । अहं एत्थ किं करोमि । [भर्तः ! यूयं हल्लीसकं प्रक्रीडय । अहमत्र किं करोमि ।]

दामोदरः—प्रेक्षको भवान् ननु ।

गवादिकृतः तेन आकुले = व्याप्ते वृन्दारण्यगते=वृन्दावने समप्रमुदिताः = तुल्यानन्दिताः स्थिताः गायन्ति = गानं कुर्वन्ति ॥ ३ ॥

आतोद्यं = वाद्यम् ।

वृद्धगोपालक—हाँ स्वामिन् ! सब तैयार होकर आ गए हैं ।

दामक—स्वामी की जय हो ।

संकर्षण—दामक ! सब गोपकुमार आ गए हैं ?

दामक—हां स्वामिन् ! सब तैयार होकर आ गए ।

दामोदर—घोषसुन्दरी, वनमाला, चन्द्रलेखा, मृगाक्षी आप सब इस आभीर ग्राम के अनुकूल हल्लीसक नृत्य को आरम्भ करें ।

सब—जैसी स्वामी की आज्ञा ।

संकर्षण—दामक । मेघनाद नगाड़े बजाओ ।

दोनों—अच्छा स्वामी ।

वृद्ध गोपालक—तुम सब हल्लीसक नृत्य करोगे पर मैं यहां क्या करूं ?

दामोदर—आप दर्शक बनें ।

वृद्धगोपालकः—भट्टा ! तह । [भर्तः ! तथा ।]

(सर्वे नृत्यन्ति ।)

वृद्धगोपालकः—ही ही सुट्ठु ईदं । सुट्ठु वाइदं । सुट्ठु णच्चिदं । जाव अहं वि णच्चेमि । परिस्सन्तो खु अहं । [ही ही सुष्ठु गीतम् । सुष्ठु वादितम् । सुष्ठु नर्तितम् । यावदहमपि नृत्यामि । परिश्रान्तः खल्वहम् ।]

(प्रविश्य)

गोपालकः—हा हा भट्टा अवक्कमदु इमादो देसादो । [हा हा भर्ता अपक्रामत्वस्माद् देशाद् ।]

दामोदरः—दामक ! किमसि सम्भ्रान्तः ।

गोपालकः—एषो अलिट्ठवषभो णाम दाणवो पिण्डीकिदणिग्घादरूवो भूमिदलं खुरपुडेहि लिहन्तो, जष्ष घोषो मेघरवत्ति षङ्किदो जादो । [एषोऽरिष्टवृषभो नाम दानवः पिण्डीकृतनिर्घातरूपो भूमितलं खुरपुटैर्लिखन्, यस्य घोषो मेघरव इति शङ्कितो जातः ।]

दामोदरः—एवं, प्राप्तोऽरिष्टर्षभः । इमा नो गोपदारिका दारकांश्च गृहीत्वैतत् पर्वतशिखरमारुह्य दुरात्मनो मम च युद्धविशेषं पश्यत्वार्यः । अहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि ।

वृद्ध गोपालक—अच्छा स्वामी ।

(सब नाचते हैं)

वृद्ध गोपालक—अहा हा ! खूब गाया । खूब बजाया । खूब नाचा । तो मैं भी नाचूँ पर मैं थक गया हूँ ।

(प्रवेश करके)

गोपालक—हा हा, स्वामी ! इस देश से भाग चलें ।

दामोदर—दामक । तुम क्यों घबड़ाए हो ?

गोपालक—संहार का पुंजीभूतस्वरूप अरिष्ट नामक दानव अपने खुर के अगले भाग से भूमि को खोद रहा है । जिसके रंभाने पर मेघ-गर्जन की शंका होती है ।

दामोदर—ऐसा, अरिष्टर्षभ आ गया । आर्य आप इन गोपकुमारियों और कुमारों को लेकर इस पर्वत के ऊपर चढ़कर पापी दानव और मेरा विशेष युद्ध देखिए । मैं इसके गर्व को चूर करूँगा ।

(सङ्कर्षणस्तैः सह निष्क्रान्तः ।)

दामोदरः—एष एष दुरात्मारिष्टर्षभः ।

कृत्वा खुरैर्भूमितलं प्रभिन्नं शृङ्गैश्च कूलानि समाक्षिपंश्च ।
भयार्तगोपैः प्रसमीक्ष्यमाणो नदन् समाधावति गोवृषेन्द्रः ॥ ४ ॥

(ततः प्रविशत्यरिष्टर्षभः ।)

अरिष्टर्षभः—एष भोः !

शृङ्गाग्रकोटिकिरणैः खमिवालिखंश्च
शत्रोर्वधार्थमुपगम्य वृषस्य रूपम् ।
वृन्दावने सललितं प्रतिगर्जमान-

दामोदरः = अरिष्टनामानं वृषभं वर्णयति—कृत्वेति ।

खुरैः = शफैः 'शफं क्लीवे खुरः पुमान् ।' अमरः । भूमितलं = मेदिनीं प्रभिन्नं कृत्वा = विदीर्य शृङ्गैश्च = बिषाणैश्च कूलान् = नदीतटान् समाक्षिपन् = पातयन् भयार्तगोपैः = भीरुगोपालकैः प्रसमीक्ष्यमाणः = प्रसमीक्ष्यते असौ इति प्रसमीक्ष्यमाणः = दृश्यमानः गोवृषेन्द्रः = गेवेन्द्रः नदन्=नादं कुर्वन् समाधावति= इत एषागच्छति ॥ ४ ॥

अरिष्टवृषभः स्वाभिप्रायं वर्णयति—शृङ्गाग्रेत्यादिना ।

अहं = वृषभोऽरिष्टनामा शत्रोः=विपक्षस्य वधार्थं = नाशार्थं वृषस्य = वृषभस्य रूपं = स्वरूपम् उपगम्य=सम्प्राप्य शृङ्गाग्रकोटिकिरणैः—शृङ्गाग्रं=विषाणाग्रं कोटि-किरणैः = कोटिरश्मिभिः खम् = आकाशम् आलिखन् = विदारयन् इव वृन्दावने = वृन्दारण्ये सललितं = सानन्दं प्रतिगर्ज्यमानं=हुम्भारवं कुर्वन् शत्रुं=रिपुं दामोदरम्

(उनके साथ संकर्षण का प्रस्थान)

दामोदर—यह, यह पापी अरिष्टर्षभ—

अपने खुर से भूतल को विदीर्ण करके और सींग से (यमुना) तट को गिराता हुआ और गर्जन करता हुआ वृषभश्रेष्ठ आ रहा है। (जिसे) इसे भय-भीत गोपगण बार-बार देख रहे हैं ॥ ४ ॥

(अरिष्टर्षभ का प्रवेश)

अरिष्टर्षभ—अरे हे ! आज मैं सींग के तीक्ष्ण अग्रभाग की किरणों से आकाश को

माक्रम्य शत्रुमहमद्य सुखं चरामि ॥ ५ ॥

हुङ्कारशब्देन ममेह घोषे स्रवन्ति गर्भा वनिताजनस्य ।
खुराग्रपातैर्लिखितार्धचन्द्रा प्रकम्पते सद्रुमकानना भूः ॥ ६ ॥

क्व नु खलु गतो नन्दगोपपुत्रः । भो नन्दगोपपुत्र ! क्वासि ।

दामोदरः—भो गोवृषाधम ! इत इतः । एष स्थितोऽस्मि ।

अरिष्टर्षभः—(दृष्ट्वा) अहो,

सारवान् खल्वयं बालो यो मां दृष्ट्वा महाबलम् ।

आक्रम्य = आक्रमणं कृत्वा विनाश्येति भावः । अद्य = अस्मिन् दिने सुखं = सुखपूर्वकं चरामि = भक्षयामि शष्पमिति शेषः ॥ ५ ॥

अरिष्टः सगर्वं स्वपराक्रममुद्घोष्यते—हुङ्कारशब्देनेति ।

मम = अरिष्टर्षभस्य हुङ्कारशब्देन = हुङ्कृतेन इह = अस्मिन् घोषे = वसतौ वनिताजनस्य = स्त्रीजनस्य गर्भाः = भ्रूणाः स्रवन्ति = स्खलन्ति । खुराग्रपातैः—खुराग्राणां = शफाग्राणां पातैः = पतनैः लिखितम् अर्धचन्द्रं यस्यां सा लिखितार्धचन्द्रा = अर्धचन्द्रलिखिता इव । सद्रुमकानना द्रुमैः = वृक्षैः काननैः = अरण्यैः सहिता = युक्ता भूः = पृथिवी प्रकम्पते = प्रकम्पमनुभवति ॥ ६ ॥

दामोदरं दृष्ट्वा साश्चर्यम् अरिष्टर्षभः मनसि विचारयति—सारवानिति ।

अयं = पुरोवर्ती बालः = श्रीकृष्णः सारवान् सारो = बलमस्ति अस्मिन्निति यः शिशुः महाबलम् = अत्यन्तपराक्रमिणं माम् = वृषभं दृष्ट्वा = अव-

---

खण्डित करता हुआ, शत्रुओं के बध के लिए बैल का रूप धारण करके वृन्दावन में सविलास गर्जन करते हुए शत्रुओं पर आक्रमण करके सुखपूर्वक चरूंगा ॥ ५ ॥

मेरे हुंकार शब्द से इस आभीर-ग्राम की स्त्रियों के गर्भ स्रवित हो रहे हैं । मेरे खुर के अग्र भाग से अर्धचन्द्रचिह्नित वन-वृक्षों से युक्त यह पृथ्वी थरथरा रही है ॥ ६ ॥

वह नन्दगोप का पुत्र कहाँ है ? अरे, नन्दगोप-पुत्र तू कहां है ?

दामोदर—अरे, नीच गोवृषभ इधर-उधर, मैं यहां हूँ

अरिष्टर्षभ (देखकर)—अरे, यह बालक बड़ा पराक्रमी है जो मेरे भयंकर

उग्ररूपं महानादं नैव भीतो न विस्मितः ॥ ७ ॥

दामोदरः—

किमेतद् भो ! भयं नाम भवतोऽद्य मया श्रुतम् ।
भीतानामभयं दातुं समुत्पन्नो महीतले ॥ ८ ॥

अरिष्टर्षभः—भो ! बालस्त्वम् । अतः खलु भयं न जानासि ।

दामोदरः—भो गोवृषाधम ! किं बाल इति मां प्रधर्षयसि ।

किं दष्टः कृष्णसर्पेण बालेन न निहन्यते ।

लोक्य किं च उग्ररूपं = प्रचण्डस्वरूपं महानादं = भीतिप्रदं शब्दं च दृष्ट्वा = श्रुत्वा भीतः न भयमाप = न विस्मितः नाश्चर्यचकितो जात इति ॥ ७ ॥

दामोदरः वृषभमुत्तरयति—किमेतदिति ।

भोः वृषभ एतत् = यत्त्वया उक्तं भयं नाम = भयाभिधं किं = किमाकारकम् अद्य = इदानीं भवतः = त्वत्तः मया = दामोदरेण श्रुतम् = आकर्णितम् इतः पूर्वं कदापि न श्रुतमित्याशयः । (अत्र) महीतले = मेदिन्यां भीतानां = भयभीतानां जनानाम् अभयं दातुं = निर्भयं कर्तुं समुत्पन्नः = प्रादुर्भूतः ॥ ८ ॥

प्रधर्षयसि = निन्दसि ।

बाल इति मत्वा प्रधर्षणं मा कुरु तत्र बीजं दर्शयति—किं दष्ट इति ।

बालेन = शिशुना कृष्णसर्पेण = कृष्णकाकोदरेण दष्टः = दंशितः किं न निहन्यते = न म्रियते म्रियत एवेत्यर्थः । हि=यथा पुरा = पूर्वस्मिन् काले बालेन =

स्वरूप, भयंकर गर्जन और महापराक्रम को देखकर न डरा और न ही आश्चर्यचकित हुआ ॥ ७ ॥

दामोदर—अरे, यह क्या आज मैंने भय का नाम तुम्हीं से सुना है । भयभीतों को अभय देने के लिए ही मैं पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ हूँ ॥ ८ ॥

अरिष्टर्षभ—तू बालक है ? इसीलिए तू भय नहीं जानता ।

दामोदर—अरे नीच गोवृषभ ! क्या मुझे बालक कहकर मेरी निन्दा करता है ?

बालेन हि पुरा क्रौञ्चः स्कन्देन निधनं गतः ॥ ९ ॥

भवितव्यम् ।

अपीदं श्रृणु मूर्ख ! त्वं कठिनोपलसञ्चयः ।
किं न पल्लवमात्रेण शैलो वज्रेण पातितः ॥ १० ॥

अरिष्टर्षभः—भो नन्दगोपपुत्र ! किं व्यवसितम् ।

दामोदरः—त्वां निधनमुपनेतुम् ।

अरिष्टर्षभः—समर्थो भवान् ।

दामोदरः—कः संशयः ।

अरिष्टर्षभः—तेन हि गृह्यतां स्वजातिसदृशं प्रहरणम् ।

दामोदरः—प्रहरणमिति । हं भोः !

बालकेन स्कन्धेन = कुमारेण क्रौञ्चः = क्रौञ्चपर्वतः निधनं गतः = विदारितः ॥ ९ ॥

पुनः दामोदरः अरिष्टं भर्त्सयति—अपीदमिति ।

रे मूर्ख-मुह्यतीति मूर्खः (मुहेः खः मूर्चेति उणादिसूत्रात् मुह-वैचित्य इति धातोः रूपम् ।) = रे अविवेकिन् इदमपि त्वं = वृषभः श्रृणु = आकर्णय पल्लव-मात्रेण = पल्लवप्रमाणेन वज्रेण = कुलिशेन कठिनोपलसञ्चयः—कठिनानां = कठोराणाम् उपलानां = प्रस्तराणां सञ्चयः = संघः यस्मिन् स शैलः=गिरिः किञ्च पातितः न खण्डितः किम् किन्तु खण्डित एव ॥ १० ॥

क्या काले (विषैले) सर्प शिशु के डसने पर कोई मरता नहीं ? पहले बालक कुमार द्वारा ही क्रौञ्च असुर का बध हुआ था ॥ ९ ॥

ऐसा होना चाहिए। अरे मूर्ख सुन ! कठिन पत्थरों से बने हुए पर्वत को पल्लव (पत्ते) के समान वज्र से नहीं गिराया गया था (क्या) ? ॥ १० ॥

अरिष्टर्षभ—रे नन्दगोप पुत्र ! क्या सोचा है ?

दामोदर—तुम्हें मारने के लिए।

अरिष्टर्षभ—समर्थ हो तुम ?

दामोदर—(इसमें) शंसय क्या ?

अरिष्टर्षभ—तो अपनी जाति के अनुकूल शस्त्र लो ।

दामोदर—शस्त्र ? अरे हे—

गिरितटकठिनांसावेव बाहू ममैतौ
प्रहरणमपरं तु त्वादृशां दुर्बलानाम् ।
अथ मम भुजदण्डैः पीड्यमानश्च शीघ्रं
यदि न पतसि भूमौ नास्मि दामोदरोऽहम् ॥ ११ ॥

अरिष्टर्षभः—तेन हि प्रवर्ततां युद्धम् ।

दामोदरः—भो गोवृषाधम ! यदि ते शक्तिरस्ति, मां पादेनैकेन स्थितं स्थानात् कम्पय ।

अरिष्टर्षभः—कोऽत्र संशयः । (तथा कर्तुं चेष्टयित्वा मूर्च्छितः पतति ।)

दामोदरः—भो गोवृष ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । अनेन वीर्येण भवान् गर्वितः ।

दामोदरः एतौ मम भुजावेव प्रहरणमिति निरूपयति—गिरितटेत्यादिना ।

गिरितटकठिनांसौ—गिरितटयोरिव कठिनौ अंसौ ययोस्तौ = पर्वततट-कठोरस्कन्धौ एव मम एतौ = उभौ बाहू = भुजौ 'भुजबाहू प्रवेष्टोदोः ।' अमरः । त्वादृशानां त्वत्सदृशानां दुर्बलानां = निर्बलानां तु अपरम्=अन्यं प्रहरणम्=आयुधं मम करावेवेति विशेषः। अथ=अनन्तरम् मम=दामोदरस्य भुजदण्डैः=दोर्दण्डैः पीड्यमानश्च = चूर्णितश्च शीघ्रं = द्राक् यदि = चेत् भूमौ = भूतले न पतसि = पतितो न भवसि (तर्हि) अहं दामोदरः = दामोदरनामा नास्मि = न भवामि ॥ ११ ॥

पर्वत के अधोभाग के समान कठिन दोनों कन्धे वाले ही मेरे भुजा शस्त्र हैं पर तुम जैसे दुर्बलों के लिए दूसरा शस्त्र है । यदि मेरी भुजा से चूर्णित होकर तू शीघ्र ही भूमि पर नहीं गिरेगा तो मेरा नाम दामोदर नहीं ॥ ११ ॥

अरिष्टर्षभ—तो युद्ध प्रारम्भ करो ।

दामोदर—अरे, नीच गोवृषभ ! यदि तुममें शक्ति है तो पृथ्वी पर रखे हुए मेरे एक पैर को हिलादो ।

अरिष्टर्षभ—इसमें क्या संदेह है । (वैसा करने की चेष्टा करके मूर्छित होकर गिर पड़ता है ।)

दामोदर—हे गोवृषभ ! धैर्य धारण करो—धैर्य धारण करो । इसी पराक्रम पर आप गर्वित थे ?

अरिष्टर्षभः—(आश्वस्य, आत्मगतम्) अहो दुष्प्रसह्योऽयं बालः ।

रुद्रो वाऽयं भवेच्छक्रो विष्णुर्वापि स्वयं भवेत् ।
अमिथ्या खलु मे तर्कः स एव पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥

आ,

यत्र यत्र वयं जातास्तत्र तत्र त्रिलोकधृत् ।
दानवानां वधार्थाय वर्तते मधुसूदनः ॥ १३ ॥

भवतु । विष्णुना हतस्याप्यक्षयो लोको मे भविष्यति । तस्माद् युद्धं

अरिष्टर्षभः बालस्य दुष्प्रसह्यं बलं दृष्ट्वा पुरुषोत्तम इति निश्चिनोति—रुद्रो-वायुयमिति ।

अयम् = बालः रुद्रः = शिवः वा = अथवा शक्रः = इन्द्रो भवेत् = स्यात् वा स्वयं = साक्षात् विष्णुः = व्यापकः हरिः भवेत् = भवितुं शक्नुयात् । मे = मम अरिष्टर्षभस्य तर्कः = विचिकित्सा अमिथ्या = सत्यमेव खलु = निश्चितम् अयं स एव = विख्यातः पुरुषोत्तमः = हरिरेवावतीर्णः ॥ १२ ॥

सर्वत्रैव हरिः वर्तते इत्यरिष्टर्षभः निरूपयति—यत्रेति ।

यत्र-यत्र = यस्मिन्-यस्मिन् स्थाने वयम् = दानवाः जाताः = उत्पन्नाः तत्र-तत्र = तस्मिन् तस्मिन् स्थाने त्रिलोकधृत्-त्रिलोकान् धरतीति = त्रिभुवनधारकः मधुसूदनः—मधुं = मधुनामानं राक्षसं सूदयति = विनाशयति-विष्णुः दान-वानां = दनुवंशीयानां वधार्थाय = विनाशयितुं वर्तते = अस्ति ॥ १३ ॥

अरिष्टर्षभ—(धैर्य धारण करके, स्वगत)—इस बालक का सामना करना बड़ा कठिन है ।

चाहे शंकर हो, इन्द्र हो अथवा स्वयं विष्णु भगवान् हों मेरा तर्क-वितर्क करना व्यर्थ है यह पुरुषोत्तम ही हैं ॥ १२ ॥

अरे । जहाँ-जहाँ हम (दानव) लोग उत्पन्न हुए वहाँ हम लोगों के लिए स्वयं त्रिलोकीरक्षक मधुसूदन भी उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥

अच्छा विष्णु के द्वारा मारे जाने पर अमर-लोक की प्राप्ति होगी । इसलिए

करिष्यामि। (प्रकाशम्) भो नन्दगोपपुत्र ! पुनरपि जातो मे दर्पः।

दामोदरः—हम्। तिष्ठ तिष्ठेदानीम्।

किं गर्जसे भुजगतो मम गोवृषेन्द्र !
पातप्रवृद्ध इव वार्षिककालमेघः।
एहि क्षिपामि धरणीतलमभ्युपेहि
वज्राहतस्तट इवाञ्जनपर्वतस्य ॥ १४ ॥

(तथा कृत्वा) एष एष दुरात्मारिष्टर्षभः,

विस्रुतरुधिरधाराक्लिन्ननासास्यनेत्रं
चलितककुदवालः प्रस्फुरत्पादकर्णः।

दामोदरः गोवृषं भर्त्सयन् भूमौ क्षिपति—किं गर्जस इति। हे गोवृषेन्द्र—रे अरिष्टर्षभ ! पातप्रवृद्धः—पातेन=जलवर्षणेन प्रवृद्धः—प्रवर्द्धमानो वार्षिककालमेघः-वर्षायां भवः स चासौ कालश्च तस्मिन् मेघः=अम्बुदः मम=दामोदरस्य भुजगतः=बाहुमध्यगतः किं गर्जसे=कथं गर्जनं करोसि। एहि=आगच्छ क्षिपामि=पातयामि अञ्जनपर्वतस्य=कज्जलगिरेः वज्राहतः=वज्रेणाहतः कुलिश-खण्डितः तट इव=खण्ड इव धरणीतलं=भूतलं अभ्युपेहि=प्राप्नुहि ॥ १४ ॥

दामोदरेण विहिताम् अरिष्टर्षभस्य दशां वर्णयति—विस्रुत इति। विस्रुत०—रुधिरस्य धारा=रुधिरधारा विस्रुता=प्रसृता या रुधिरधारा=रक्तश्रेणी ताभिः क्लिन्नम्=आर्द्रं नासास्यनेत्रं=नासिकामुखनयनं यथा स्यात्तथा चलितककुद-

---

युद्ध करूँगा। (प्रकाश में) हे नन्दकुमार ! मुझे पुनः अहंकार हो गया है।

दामोदर—हुंः हुंः ठहरो-ठहरो अभी।

रे अरिष्टर्षभ, वर्षा काल में उमड़ते हुए बादल की तरह मेरी भुजाओं में पड़ा हुआ कैसा गर्जन करता है। आओ तुम्हें मैं पृथ्वीपर गिराकर वज्र से आहत कज्जल पर्वत की भाँति खण्ड खण्ड कर डालूं॥ १४ ॥

(वैसा करके) अरे, यह २ पापी अरिष्टर्षभ !

रुधिर की धारा से इसका मुख, नासिका और नेत्र तर हो रहे हैं। वृषांग के बाल

निपतति विगतात्मा भूतले वज्रभिन्नो
गिरिरिव शिखराग्रैर्गोवृषो दानवेन्द्रः ॥ १५ ॥

(प्रविश्य)

दामकः—जेदु भट्टा । एषो भट्टा षङ्कलिषणो पव्वदादो जमुणाहले कालिओ णाम महाणाओ उट्ठिदो त्ति षुणिअ तं पडिगओ । वालेहि वालेहि भट्टा ! षङ्कळिषणं । [जयतु भर्ता । एष भर्ता संकर्षणः पर्वताद् यमुनाहृदे कालियो नाम महानाग उत्थित इत्ति श्रुत्वा तं प्रतिगतः । वारय वारय भर्तः ! संकर्षणम् ।]

दामोदरः—कालियो नाम मयापि श्रूयते सदर्पः पन्नगपतिः । भवत्वहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि ।

वालः—चलिताः = प्रकम्पिताः ककुदवालाः = वृषाङ्गकचाः 'प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम् ।' अमरः । यस्य सः प्रस्फुरद्०—प्रस्फुरन्तौ = प्रकम्पितौ पादौ = चरणौ कर्णौ = श्रोत्रे च यस्य सः वज्रभिन्नः–वज्रेण = कुलिशेन भिन्नः = खण्डितः शिखराग्रैः = कूटैः गिरिरिव = पर्वत इव विगतात्मा—विगतः = विनष्टः आत्मा = जीवो यस्य सः गोवृषः = वृषश्रेष्ठः दानवेन्द्रः = दनुजेशः भूतले = पृथिव्यां निपतति = पतितो भवति ॥ १५ ॥

थरथरा रहे हैं। पैर और कान काँप रहे हैं। यह दैत्यराज वृषभश्रेष्ठ वज्र से आहत चोटी वाले पर्वत की भाँति पृथ्वी पर गिरता है ॥ १५ ॥

(प्रवेश करके)

दामक— स्वामी की जय हो। 'यह स्वामी (आपके) भाई संकर्षण 'यमुना नदी में कालिय नामक महानाग उठा है' ऐसा सुनकर पर्वत से वहीं गए हैं। रोकिये, स्वामिन् संकर्षण को रोकिये।

दामोदर—मैंने भी कालिय नामक महा अहंकारी सर्पराज को सुना है। अच्छा, मैं इसका दर्प चूर्ण करता हूँ।

गोब्राह्मणादयस्तेन सुजूष्यन्ते किल प्रजाः ।
अद्यप्रभृति शान्तात्मा निष्प्रभः स भविष्यति ॥ १६ ॥

(निष्क्रान्तौ ।)

तृतीयोऽङ्कः ।

दामोदरः कालियस्य दर्पप्रशमनं चिकीर्षति—गोब्राह्मणादय इति ।
तेन = कालियनागेन गोब्राह्मणादयः—गावः = धेनवः ब्राह्मणाः = द्विजाश्च इत्यादयः प्रजाः = जनाः किल—निश्चयेन । सुजूष्यन्ते=व्यथिता भवन्ति अद्यप्रभृति= अद्यारभ्य निष्प्रभः—प्रभायाः=दीप्तेः निष्क्रान्तः = रहितः-शान्तात्मा—शान्तः= दर्परहितः आत्मा = जीवः यस्य स कालियः भविष्यति = वर्त्तिष्यते ॥ १६ ॥

वह (कालिय नाग) गो, ब्राह्मण आदि लोगों को कष्ट देता है (अतः) आज से प्रभारहित और (दर्परहित) शान्त हो जायगा ॥ १६ ॥

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति दामोदरः ।)

दामोदरः—

एता मत्तचकोरशावनयनाः प्रोद्भिन्नकम्रस्तनाः
कान्ताः प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचयो विस्रस्तकेशस्रजः ।
सम्भ्रान्ता गलितोत्तरीयवसनास्त्रासाकुलव्याहृता-
स्त्रस्ता मामनुयान्ति पन्नगपतिं दृष्ट्वैव गोपाङ्गनाः ॥ १ ॥

दामोदरः कालियेन त्रस्ताः गोपाङ्गना वर्णयति—एता इति ।

मत्तचकोरशावनयनाः—मत्ताः = मदाविष्टाः चकोरशावाः = चक्रवाकशिशवः तेषां नयनानीव नयनानि = नेत्राणि यासां ताः प्रोद्भिन्नकम्रस्तनाः—प्रोद्भिन्नौ = पूर्णोदितौ कम्रौ = सुन्दरौ स्तनौ = कुचौ यासां ताः प्रस्फुटिताधरोष्ठरुचयः—प्रस्फुटिता—विकसिता अधरोष्ठानाम् = अधरच्छदानां रुचिः = कान्तिः यासां ताः विस्रस्तकेशरचनाः । विस्रस्ताः = विगलिताः केशानां = कचानां पुष्पमाला यासां ताः गलितोत्तरीयवसनाः—गलितं = पतितम् उत्तरीयं वसनम् = उपरिवस्त्रं प्रावार इत्यर्थः यासां ताः त्रासाकुलव्याहृताः—त्रासेन = भयेन आकुलं = व्याकुलं व्याहृतं = व्याहारः—'व्याहार उक्तिर्वचनम् ।' अमरः । यासां ताः एताः = इमाः कान्ताः = मनोहराः सम्भ्रान्ताः = संक्षुब्धाः गोपाङ्गनाः = गोपवधूटयः । त्रस्ताः = भीताः सत्यः पन्नगपतिं—पन्नगानां = सर्पाणां पतिं = प्रभुं कालियनागमिति यावत् दृष्ट्वैव = विलोक्य एव मां = दामोदरम् अनुयान्ति=अनुसरन्ति ॥१॥

(दामोदर का प्रवेश)

दामोदर—**मदविह्वल चकोरों के बच्चों की भाँति नेत्रों वाली, प्रस्फुटित सुन्दर कुचों वाली, सुन्दर होठों से विकसित शोभा वाली, गिरते हुए केश की पुष्पमालाओं वाली और जिनके उत्तरीय वस्त्र गिर गए हैं और भय की आकुलता से युक्त वचन वाली ये मनोहारिणी भयभीत गोपबधुएँ कालिय नाग को देखकर मेरे पीछे आ रही हैं ॥ १ ॥**

(ततः प्रविशन्ति गोपकन्यकाः ।)

सर्वाः—मा खु मा खु भट्टा! एदं जलासअं पविसिदुं। एसो खु दुट्ठमहोरअकुलावासो। [मा खलु मा खलु भर्तः! एतं जलाशयं प्रवेष्टुम्। एष खलु दुष्टमहोरगकुलावासः।]

दामोदरः—न खलु न खलु विषादः कार्यः। पश्यन्तु भवत्यः।

निष्पक्षिव्यालयूथं भयचकितकरिव्रातविप्रेक्षिताम्भो-
गम्भीरं स्निग्धनीरं ह्रदमुदधिनिभं क्षोभयन् सम्प्रविश्य।
गोपीभिः शङ्किताभिः प्रियहितवचनैः पेशलैर्वार्यमाणः

गोपाङ्गनाभिः वार्यमाणोऽपि दामोदरः ह्रदप्रवेशं कालियधर्षणञ्च निगमयति—निष्पक्षीति।

निष्पक्षिव्यालयूथं—निर्गतानि पक्षिणां = विहगानां व्यालानां = श्वापदानां 'व्यालः पुंसि श्वापदसर्पयोः' अमरः। यूथानि यस्मिन् तत् भयचकितकरिव्रातविप्रेक्षिताम्भः—भयचकितेन = भीतिचपलेन करिव्रातेन = हस्तिसमूहेन विप्रेक्षितम् = अवलोकितम् अम्भः = नीरं यस्य तत गम्भीरम् = अगाधं स्निग्धनीरं—स्निग्धं = मसृणं 'चिक्कणं मसृणम् स्निग्धम्' अमरः। नीरं = जलं यस्य तत् उदधिनिभम्—उदधेः = समुद्रस्य निभं = संकाशं 'निभसंकाशनीकाश' अमरः। ह्रदम् = अगाधजलम् 'जलाशयो जलाधारस्तत्रागाधजलो ह्रदः।' अमरः। क्षोभयन् = आविलं कुर्वन् संप्रविश्य = अन्तस्तलं गत्वा (यद्यपि) पेशलैः = चारुभिः। 'चारौ दक्षे च पेशले।' अमरः। प्रियहितवचनैः—प्रियाणि = मधुराणि = हितानि

(गोपकुमारियों का प्रवेश)

सब—ऐसा न करना स्वामिन्, ऐसा न करना। जलाशय में प्रवेश न करना। यह क्रोधी महानाग के कुल का निवास स्थान है।

दामोदर—नहीं, देखें, आप चिन्ता न करें।

पक्षी और पशुओं के समूह से रहित, भयचंचल हाथियों के समूह के द्वारा जिसका अगाध और स्वच्छ जल देखा जाता है, समुद्र के समान उस जलाशय में प्रवेश करके उसके जल को क्षुब्ध करते हुए भयशंकित गोपियों के द्वारा मधुर

कालिन्दीवासरक्तं भुजगमतिबलं कालियं धर्षयामि ॥ २ ॥

सर्वाः—भट्टा ! षङ्कलिषण ! वालेहि वालेहि भट्टिदामोदलं । [भर्तः ! संकर्षण ! वारय वारय भर्तृदामोदरम् ।]

(प्रविश्य)

सङ्कर्षणः—अलमलं भयविषादाभ्याम् । दर्शितोऽनुरागः । पश्यन्तु भवत्यः ।

विषदहनशिखाभिर्यन्मुखात् प्रोद्गताभिः
कपिशितमशिवाभिश्चक्रवालं दिशानाम् ।

हितकराणि वचनानि = वचांसि 'वचनं वचः' अमरः । तैः = हेतुभिरित्यर्थः । शङ्किताभिः = विचिकित्सिताभिः 'विचिकित्सा तु संशयः ।' अमरः । गोपीभिः = गोपाङ्गनाभिः वार्यमाणः = निषिद्ध्यमानः तथापि कालिन्दीवासरक्तं—कालिन्द्यां = यमुनायां वासः = वसतिः तस्मिन् रक्तम् = अनुरक्तम् , अतिबलं = बलवन्तं कालियम् = एतदभिधं भुजगं—भुजाभ्यां गच्छतीति भुजगः = सर्पः तं धर्षयामि = हठान्निष्कासयामि ॥ २ ॥

संकर्षणः कृष्णे भीते गोपीजनं समाश्वासयति—विषदहनेत्यादिना ।

यन्मुखात्-यस्य=कालियस्य मुखम्=आननं तस्मात् प्रोद्गताभिः = नि सृताभिः अशिवाभिः=अकल्याणकारिणीभिः विषदहनशिखाभिः—विषं=गरलम् एव दहनः= अनलः तस्य शिखाः=ज्वालाः ताभिः दिशां = काष्ठानां 'दिशस्तु ककुभः काष्ठाः ।' अमरः । चक्रवालं=मण्डलं 'चक्रवालं तु मण्डलम् ।' अमरः । कपिशितं=कृष्णलोहितम्

कल्याणकारी वचनों से अनेक प्रकार से मना किए जाने पर भी महापराक्रमी यमुना में निवास करने वाले कालिय नाग को (हठात्) निकाल फेकूँगा ॥ २ ॥

सब—स्वामिन् ! संकषंण ! रोको भाई दामोदर को रोको ।

(प्रवेश करके)

संकर्षण—आप लोग भय और दुख न करें । तुम्हारा अमित प्रेम देख लिया गया । आप देखें,

जिसके मुख से निकलने वाले अकल्याणकारी विष की प्रचण्ड ज्वालाओं से

सरभसमभियान्तं कृष्णमालक्ष्य शङ्की
नमयति शिरसान्तर्मण्डलं चण्डनागः ॥ ३ ॥

सर्वाः—हं भट्टिदामोदलो वि तादिसो एव। [हं भर्तृदामोदरोऽपि तादृश एव।]

दामोदरः—सर्वप्रजाहितार्थं द्रुततरं नागं मे वशं करोमि। (इति ह्रदं प्रविष्टः।)

सर्वाः—हा हा धूमो उट्ठिदो। [हा हा धूम उत्थितः।]

दामोदरः—अहो ह्रदस्य गाम्भीर्यम्। इह हि,

सितेतराभुग्नदुकूलकान्तिद्रुतेन्द्रनीलप्रतिमानवीचिम्।

'श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते।' अमरः। शङ्की = शङ्कितः चण्डनागः = क्रुद्धसर्पः सरभसं = रभससहितं सवेगमित्यर्थः। आयान्तम् = आगच्छन्तं कृष्णं = दामोदरम् आलक्ष्य = दृष्ट्वा शिरसा = मूर्ध्ना अन्तर्मण्डलम् = आभोगं नमयन्ति = नम्रीकुर्वन्ति ॥ ३ ॥

दामोदरः यमुनामुपवर्णयति—सितेतरेत्यादिना।

सान्तर्विषाग्निम् अन्तः = मध्ये विषाग्निना = विषानलेन सहितां तां कालियधूमधूम्रां = कालियेन = सर्पेण निःसृतो यो धूमः तेन धूम्रः वर्णः यस्याः ताम्

सारी दिशाएँ लाल हो रही हैं वह क्रुद्ध सर्प जल्दी-जल्दी आते हुए कृष्ण को देख कर भय की आशंका से अपने फणों को नीचा कर रहा है ॥ ३ ॥

सब—हैं! भर्ता दामोदर भी वैसा ही है।

दामोदर—सारे प्राणियों के हित के लिए मैं नाग को शीघ्र ही वश में करता हूँ।

(तालाब में प्रवेश करता है)

सब—हाय हाय धुआँ उठ रहा है।

दामोदर—अये, यह तालाब की इतनी गहराई! यहाँ तो—विष की अग्नि से

इमामहं कालियधूमधूम्रां स्रान्तविषाग्नि यमुनां करोमि ॥ ४ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः ।)

वृद्धगोपालकः—हा भट्टा ! एषो कण्णआहिं वालिअमाणो जमुणाहलं पविट्ठो । मा खु मा खु षाहषं कलिअ पविषिदुं । एत्थ वग्घा वराहा हत्थिणो पाणीअं पिबिअ तहिं तहिं एव्व विमरन्ति । कहं ण दिस्सदि । किं दाणि करोमि । होदु, इमं दाव कुम्भवलाअं आलुहिअ णिज्झाआमि । (आरुह्यावलोक्य) हा हा धूमो उट्ठिदो । [हा भर्तः ! एष कन्यकाभिर्वार्यमाणो यमुनाह्रदं प्रविष्टः । मा खलु मा खलु साहसं कृत्वा प्रवेष्टुम् । अत्र व्याघ्रा वराहा हस्तिनः पानीयं पीत्वा तत्र तत्रैव विम्रियन्ते । कथं न दृश्यते । किमिदानीं करोमि । भवतु, इमं तावत् कुम्भपलाशमारुह्य निध्यायामि । हा हा धूम उत्थितः ।]

इमां = पुरोवर्तिनीं यमुनाम् = एतन्नाम्नीं सरितम् अहं = दामोदरः सितेतराभुग्न दुकूलकान्ति०—सितेतरेण = कृष्णकान्तिना आभुग्नम् = संमिश्रं यद् दुकूलं = क्षौमं तस्य कान्तिरिव कान्तिः रुचिर्यस्याः सा तथा द्रुतस्य = द्रवीभूतस्य इन्द्रनीलस्य = इन्द्रनीलमणेः प्रतिमाना = तुल्या वीचिः = तरंगः यस्याः सा तां यमुनां = कालिन्दीं करोमि = विदधामि ॥ ४ ॥

निध्यायामि = ध्यानं करोमि ।

व्याप्त तथा कालिय के धुएँ से धूमिल रंग वाली इस यमुना को मैं शीघ्र ही इन्द्र नील मणि के समान नीली छवियुक्त लम्बी तरंगों वाली करूँगा ॥ ४ ॥

(प्रस्थान)

(वृद्ध गोपालक का प्रवेश)

वृद्धगोपालक— हा स्वामी ! गोपकुमारियों के द्वारा बारम्बार मना किये जाने पर भी यह कृष्ण यमुना नद में घुस गया ! नहीं, प्रवेश करने का साहस न करो । बाघ, सुअर और हाथी इसके जल को पीकर वहीं के वहीं मर जाते हैं । क्या देखते नहीं ? इस समय मैं क्या करूं ? अच्छा, मैं पलाश के पेड़ पर चढ़कर ध्यान करूँगा । चढ़कर और देखकर हाय-हाय धुआँ उठ रहा है ।

सङ्कर्षणः—पश्यन्तु भवत्यः ।

दामोदरोऽयं परिगृह्य नागं विक्षोभ्य तोयं च समूलमस्य ।
भोगे स्थितो नीलभुजङ्गमस्य मेघे स्थितः शक्र इवावभाति ॥५॥

वृद्धगोपालकः—ही ही षाहु भट्टा ! षाहु । [ही ही साधु भर्तः ! साधु ।]

(ततः प्रविशति कालियं गृहीत्वा दामोदरः ।)

दामोदरः—एष भोः !

निर्भर्त्स्य कालियमहं परिविस्फुरन्तं
मूर्ध्नाश्रितैकचरणश्चलबाहुकेतुः ।

बलदेवः आभोगोपरि स्थितं दामोदरं गोपीजनं दर्शयति—दामोदरमिति ।

अयं दामोदरः = श्रीकृष्णः तोयं = जलं विक्षोभ्य = विलोड्य समूलं—मूलेन सहितं = मूलसहितं परिगृह्य = करे धृत्वा अस्य = कालियस्य नीलभुजङ्गमस्य = कृष्णसर्पस्य भोगे = मस्तके फणे वा स्थितः = उपविष्टः मेघे = वलाहके स्थितः स्थीयमानः शक्रः = शतक्रतुरिव अवभाति = प्रतीयते शोभते ॥ ५ ॥

दामोदरः कालिये सर्पे स्वकार्यं विवृणोति—निर्भर्त्स्येति ।

अहं = दामोदरः मूर्ध्ना० मूर्ध्नि = मस्तके 'मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम् ।' अमरः ।' आश्रितं = धृतम् एकचरणं = पादैकं यस्य सः चलबाहुकेतुः—चलः = चञ्चलः बाहुरेव = प्रवेष्ट एव 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोः ।' अमरः । केतुः = ध्वजा यस्य सः । परिविस्फुरन्तं—परितः = सर्वतः विस्फुरन्तं = देदीप्यमानं कालियम्=एतन्ना-

---

संकर्षण—अये, तुम देखो ।

यह दामोदर नाग को पकड़ कर और इस (नद) के सम्पूर्ण जल को मथकर नीले सर्प के फण पर, विराजमान, बादल पर स्थित इन्द्र की भाँति मालूम पड़ता है ॥ ५ ॥

वृद्धगोपालक—हा, हा ! बहुत ठीक किया स्वामिन् ! बहुत ठीक किया ।

(कालिय को पकड़ कर दामोदर का प्रवेश)

दामोदर—अरे यह—

उग्र कालिय का तिरस्कार करके, मस्तक पर एक पैर रखकर, चञ्चल भुजाओं

भोगे विषोल्बणफणस्य महोरगस्य
हल्लीसकं सललितं रुचिरं वहामि ॥ ६ ॥

सर्वाः—अच्छलीअं भट्टा ! अच्छलीअं। कालिअस्स पञ्च फणाणि अक्कमन्तो हल्लीषअं पकोलदि। [आश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम्। कालियस्य पञ्च फणानाक्रामन् हल्लीसकं प्रक्रीडति।]

दामोदरः—यावदहमपि पुष्पाण्यपचिनोमि।

कालियः—आः,

लोकालोकमहीधरेण भुवनाभोगं यथा मन्दरं
शैलं शर्वधनुर्गुणेन फणिना यद्वच्च यादोनिधौ।

मानं सर्पं निर्भर्त्स्य = तिरस्कृत्य विषोल्बणफणस्य—विषेण = गरलेन उल्बणाः = उग्राः फणाः = फटाः यस्य तस्य—महोरगस्य—महांश्चासावुरगः तस्य = महासर्पस्य भोगे = फणाया उपरि रुचिरं = सुन्दरं सललितं = सविलासं हल्लीसकं = तन्नामकनृत्यं वहामि = करोमि ॥ ६ ॥

कालियः दामोदरं निर्भर्त्सयति-लोकालोकेति।

यथा = येन प्रकारेण लोकालोकमहीधरेण—लोकश्च अलोकश्च स चासौ महीधरश्च तेन=लोकालोकाचलेन भुवनाभोगं-भुवनस्य = संसारस्य आभोगं=परिपूर्णतां यद्वच्च = येन प्रकारेण च यादोनिधौ—यादांसि = जलजन्तुवः तेषां निधिः = आकरः तस्मिन् = समुद्रे तन्मन्थने इति शेषः शर्वधनुर्गुणेन शर्वस्य = शङ्करस्य 'ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः' इत्यमरः। धनुर्गुणेन धनुषः = चापस्य गुणः = रज्जुः तेन = प्रत्यञ्चाभूतेन इति यावत्। फणिना—फणमस्यास्तीति तेन

को ही ध्वजा बनाकर गरल से उग्र फण वाले इस महासर्प के फणों के ऊपर मैं सविलास, सुन्दर हल्लीसक नृत्य करता हूँ ॥ ६ ॥

सब—आश्चर्य स्वामिन्, आश्चर्य। कालिय के पाँचों फणों पर यह हल्लीसक नृत्य कर रहा है।

दामोदर—मैं अभी पुष्प चुनूँगा।

कालिय—अरे,

जैसे लोकालाक पर्वतों ने सारे भुवनों को घेर रखा है तथा जिस प्रकार से (समुद्रमन्थन के समय) समुद्र में शंकर के धनुषके प्रत्यंचाभूत शेष नाग ने

स्थूलाखण्डलहस्तिहस्तकठिनो भोगेन संवेष्टितं
त्वामेष त्रिदशाधिवासमधुना सम्प्रेषयामि क्षणात् ॥७॥

वृद्धगोपालकः—हा हा भट्टा !। एसो भट्टिदामोदलो पुप्फाणुकारेहि पदेहि आआरवन्तं विअ जमुणाहलं महाणाअं पादेण परिघट्ट अन्तो पुप्फाणि अवइणोदि। (अवतीर्य) षाहु भट्टा ! षाहु। फल्लेहि फल्लेहि। अह वि षहाओ होमि। अहो भाआमि भट्टा ! भाआमि। जाव इमं वुत्तन्तं णन्दगोवष्ष णिवेदेमि। (निष्क्रान्तः।) [हा हा भर्तः ! एष भर्तृदामोदरः पुष्पानुकाराभ्यां पदाभ्यामाकारवन्तमिव यमुनाह्रदं महानागं पातेन परिघट्टयन् पुष्पाण्यवचिनोति। साधु भर्तः ! साधु। फालय फालय। अहमपि सहायो भवामि। अहो बिभेमि भर्तः ! बिभेमि। यावदिमं वृत्तान्तं नन्दगोपाय निवेदयामि।]

दामोदरः—

विध्वस्तमीनमकराद् यमुनाह्रदान्ताद्

भोगवता = शेषराजेन मन्दरं = तन्नामानं शैलं = गिरिं वेष्टितमिति शेषः तद्वत् (यत्तदोर्नित्यसंबन्धात्) = तेन प्रकारेण स्थूलः = महान् आखण्डलस्य = इन्द्रस्य हस्ती = ऐरावतः तस्य हस्तः = शुण्डः तद्वत् कठिनः = कठोरः एषः = अहं भोगेन = स्वफणेन संवेष्टितं = परिवेष्टितं त्वां = दामोदरम् अधुना = साम्प्रतं क्षणात् = लवानन्तरमेव त्रिदशाधिवासं—त्रिदशस्य = यमस्य अधिवासं = स्थानं यमपुरीमिति यावत्। संप्रेषयामि = संप्रापयिष्यामि ॥ ७ ॥

दामोदरः कालियं न्यक्करोति—विध्वस्तेति।

मन्दराचल पर्वत को लपेट लिया था उसी प्रकार से आज मैं महान ऐरावत की सूँड की भाँति कठिन अपने फण से तुम्हें लपेटकर क्षण भर में ही यम के घर भेज दूँगा ॥ ७ ॥

वृद्धगोपालक—हा, हा स्वामी ! यह भर्ता दामोदर कुसुम के समान कोमल पैरों से मूर्तिमान यमुना नद में महानाग को पैर से कुचलते हुए पुष्प चुन रहे हैं। ठीक है स्वामी, ठीक है, चुनो, चुनो। मैं भी सहायक होता हूँ। अरे ! डरता हूँ स्वामिन् ! डरता हूँ। मैं इस घटना को नन्द गोप से निवेदित करता हूँ।

दामोदर— मछली और मकर विनाशित, यमुना नद के भीतर से बड़े गर्व से

दर्पोच्छ्रयेण महता दृढमुच्छ्वसन्तम् ।
आशीविषं कलुषमायतवृत्तभोग-
मेष प्रसह्य सहसा भुवि विक्षिपामि ॥ ८ ॥

कालियः—एष भोः !

रोषेण धूमायति यस्य देहस्तेनैव दाहं पृथिवी प्रयाति ।
ज्वालावलीभिः प्रदहामि सोऽहं रक्षन्तु लोकाः समरुद्गणास्त्वाम् ॥९॥

दामोदरः—कालिय ! यदि ते शक्तिरस्ति, दह्यतां ममैको भुजः ।

विध्वस्तमीनमकरात्—विध्वस्ताः = विनाशिताः मीनाः = मत्स्याः मकराः = नक्राश्च यस्मात् तस्मात् यमुनाह्रदान्ताद् = यमुनाह्रदान्तात्—यमुनायाः = कालिन्द्याः ह्रदः = अगाधजलः तस्य अन्तः = मध्यं तस्मात् महता = विपुलेन दर्पोच्छ्रयेण—दर्पस्य = अवलेपस्य उच्छ्रयः = आधिक्यं तेन फुंकारेणेति यावत् दृढं = भृशम् उच्छ्वसन्तं = निश्वसन्तम् आयतवृत्तभोगम्—आयतः = प्रसारितः वृत्तः = वर्तुलो भोगः = फटा यस्य तं कलुषं = दुष्टम् आशीविषं = सर्पं कालियमिति यावत् । एषः = अहं प्रसह्य = हठात् सहसा = झटिति भुवि = पृथिव्यां क्षिपामि = प्रक्षिप्तं करोमि ॥ ८ ॥

कालियः त्वां दहामीति श्रीकृष्णं सडिण्डिमं निर्भर्त्सयतीत्याह—रोषेणेति ।

यस्य = कालियस्य रोषेण = कोपेन देहः = विग्रहः धूमायति = धूम इवाचरति—धूमो निस्सरतीति यावत् । तेनैव = धूमेनैव पृथिवी = मेदिनी दाहं = ज्वलनं प्रयाति = प्राप्नोति सोऽहं = स एवाहं ज्वालावलीभिः—ज्वालानाम् = अग्निशिखानाम् अवल्यः = श्रेणयः ताभिः त्वां = श्रीकृष्णं प्रदहामि = भस्मसात् करोमि । समरुद्गणाः-मरुद्गणेन = देवेन सहिताः लोकाः = जनाः रक्षन्तु = पालयन्तु त्वामिति शेषः ॥ ९ ॥

फुँकार और तेज उच्छ्वास छोड़ने वाले अपने चौड़े फण को फैलाने वाले दुष्ट कालियनाग को मैं हठपूर्वक शीघ्र ही पृथ्वी पर निकाल फेकूँगा ॥ ९ ॥

दामोदर—कालिय यदि तुझमें शक्ति हो तो मेरे एक हाथ को जला दो ।

कालियः—हहह,

चतुःसागरपर्यन्तां ससप्तकुलपर्वताम्।
दहेयं पृथिवीं कृत्स्नां किं भुजं न दहामि ते ॥ १० ॥

हं, तिष्ठेदानीम्। एष त्वां भस्मीकरोमि। (विषाग्निं मुञ्चति)

दामोदरः—हन्त दर्शितं ते वीर्यम्।

कालियः—प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् नारायणः।

दामोदरः—अनेन वीर्येण भवान् गर्वितः।

कालियः—प्रसीदतु भगवान्।

गोवर्धनोद्धरणमप्रतिमप्रभावं

कालियः स्वविषेण कृत्स्नं लोकं दग्धुं शक्नोमीति सगर्वं वक्ति—चतुस्सागरेति।

ससप्तकुलपर्वतां—सप्तकुलपर्वतेन = सप्तमुख्यगिरिणा सहितां = युक्तांचतुस्सागरपर्यन्तां—चत्वारः सागराः = समुद्राः पर्यन्तः = अवधिः यस्यास्तां = चतुस्समुद्रावधिं कृत्स्नाम् = अशेषां पृथिवीं = महीम् (अहम्) दहेयम् = दग्धुं शक्नुयाम्। ते = तव भुजं = बाहुं किञ्च दहामि = दग्धुं न शक्नोमि किं ? दहाम्येवेति भावः ॥ १० ॥

कालियः श्रीकृष्णबाहुदाहेन स्वशक्त्यपचयं प्रकटयति—गोवर्धनेति।

अप्रतिमप्रभावं—नास्ति=न विद्यते प्रतिमा=उपमा यस्य सः तादृशः प्रभावो यस्य

कालिय—अरे—

सात पर्वतों से युक्त, चार समुद्रों तक फैली हुई इस सम्पूर्ण पृथ्वी को जला सकता हूँ तो फिर क्या तुम्हारी एक भुजा को नहीं जला सकता ? ॥ १० ॥

ठहर तो जरा यह तुझे भस्म करता हूँ। (विषाग्नि छोड़ता है।)

दामोदर—ओह, तुम्हारे पराक्रम को देख लिया।

कालिय—प्रसन्न हो भगवान नारायण प्रसन्न हो।

दामोदर—इसी पराक्रम पर आपको इतना गर्व था ?

कालिय—भगवान, प्रसन्न हों—

देवेश ! अनुपम प्रभाव वाले, गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले, मन्दराचल

बाहुं सुरेश ! तव मन्दरतुल्यसारम् ।
का शक्तिरस्ति मम दग्धुमिमं सुवीर्यं
यं संश्रितास्त्रिभुवनेश्वर ! सर्वलोकाः ॥ ११ ॥

भगवन् ! अज्ञानादतिक्रान्तवान्, सान्तःपुरः शरणागतोऽस्मि ।

दामोदरः—कालिय ! किमर्थमिदानीं यमुनाह्रदं प्रविष्टोऽसि ।

कालियः—भगवतो वरवाहनाद् गरुडाद् भीतोऽहमिह प्रविष्टोऽस्मि । तदिच्छामि गरुडादभयं भगवत्प्रसादात् ।

दामोदरः—भवतु भवतु ।

तम् गोवर्धनोद्धरणं–गोवर्धनस्य=एतन्नामाचलस्य उद्धरणम्=उत्थापनं मन्दरतुल्यसारं—मन्दरेण = मन्दरगिरिणा तुल्यः = समः सारः=बलः 'सारो बले स्थिरांशे च ।' अमरः । यस्य तम् ते तव=भवतः बाहुं = भुजं हे सुरेश–सुराणाम् ईशः = देवेशः तत्सम्बुद्धौ इमं = पुरोवर्तिनं सुवीर्यं = शोभनं वीर्यं यस्मिन् तं = महापराक्रमिणं बाहुमिति शेषः । दग्धुं = दग्धं कर्तुं मम = कालियस्य का शक्तिरस्ति = किं सामर्थ्यं वर्तते । हे त्रिभुवनेश्वर–त्रिभुवनस्य = लोकत्रयस्य ईश्वरः = प्रभुः तत्सम्बुद्धौ इमं = बाहुं सर्वलोकाः = अशेषभुवनानि संश्रिताः = आश्रयं प्रापिताः तं कथं दग्धं कर्तुं शक्नोमीति भावः ॥ ११ ॥

के समान बल से युक्त आपकी भुजा, जिस भुजा पर सभी लोक आश्रित हैं, हे देवेश ! उसे जलाने की शक्ति मुझमें कहाँ है ॥ ११ ॥

हे भगवान अज्ञान के कारण मैने यह भूल की मैं अपनी रानियों के साथ आपकी शरण में आया हूँ ॥ ११ ॥

दामोदर—कालिय किसलिए तुम यमुना नदी में प्रविष्ट हुए हो ?

कालिय—आपके श्रेष्ठ वाहन गरुड से डरकर ही मैं यहाँ घुसा हूँ। तो मैं आपकी कृपा से गरुड के भय से मुक्त होना चाहता हूँ ।

दामोदर—अच्छा, अच्छा ।

मम पादेन नागेन्द्र ! चिह्नितं तव मूर्धनि ।
सुपर्ण एव दृष्ट्वेदमभयं ते प्रदास्यति ॥ १२ ॥

कालियः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

दामोदरः—प्रविशतु भवान् ।

कालियः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः ।

दामोदरः—अथवा एहि तावत् ।

कालियः—भगवन् ! अयमस्मि ।

दामोदरः—अद्यप्रभृति गोब्राह्मणपुरोगासु सर्वप्रजास्वप्रमादः कर्तव्यः ।

कालियः—भगवन् ! मद्विषदूषितमिदं जलम् । तदिदानीमेव विषं संहृत्य यमुनाह्रदान्निष्क्रामामि ।

कृष्णः गरुत्मता भीतं नागं स्वचरणचिह्नं दत्त्वा निर्भयं करोतीत्याह—मम पादेनेति ।

हे नागेन्द्र—नागानां = सर्पाणाम् इन्द्रः = श्रेष्ठः तत्सम्बुद्धौ तव = भवतः मूर्धनि = मस्तके 'मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम् ।' अमरः । (मूर्धन् शब्दात् सप्तम्येकवचने 'विभाषा ङिश्योरि'ति सूत्रेण पाक्षिके अकारलोपाभावे एतद्रूपम्) मम = दामोदरस्य पादेन = चरणेन चिह्नितं = लक्षितं 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम् ।' अमरः । इदं = चिह्नं दृष्ट्वा एव = पश्यन्नेव सुपर्णः = गरुडः ते = तुभ्यम् अभयं = निर्भयं प्रदास्यति = अर्पयिष्यति ॥ १२ ॥

हे सर्पराज, मेरे चरणचिह्नों से चिह्नित तुम्हारे सिर को देख करके ही गरुड़ तुम्हें अभय प्रदान करेंगे ।

कालिय—अनुगृहीत हूँ ।

दामोदर—आप प्रवेश करें ।

कालिय—भगवान नारायण की जैसी आज्ञा ।

दामोदर—अच्छा यहाँ आओ ।

कालिय—भगवान मैं यह हूँ ।

दामोदर—आज से लेकर गौ और ब्राह्मण और प्रजाओं से प्रमाद न करना ।

कालिय—भगवान् यह जल विष से कलुषित हो गया है तो इस समय ही सारा विष लेकर यमुना नद से निकल जाता हूँ ।

दामोदरः—प्रतिनिवर्त्यतां भवान् ।

कालियः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः । (सपरिजनो निष्क्रान्तः ।)

दामोदरः—यावदहमपि ह्रदाद् गृहीतानि पुष्पाणि गोपकन्यकाभ्यः प्रयच्छामि ।

सर्वाः—एसो भट्टा अम्हाणं हिअआणन्दं करन्तो अक्खदसरीरो इदो एव्व आअच्छदि । जेदु भट्टा । [एष भर्तास्माकं हृदयानन्दं कुर्वन् अक्षतशरीर इत एवागच्छति । जयतु भर्ता ।]

सङ्कर्षणः—दिष्ट्या गोब्राह्मणहितं कृतम् ।

दामोदरः—गृह्यन्तां पुष्पाणि ।

सर्वाः—भट्टा ! एदाणि मुणिसङ्घेहि अणवइदपुव्वाणि पुप्फाणि पलामिट्ठाणि चन्दादिच्चकिरणेहि अपरिमद्दिदाणि । भाआमो भट्टा ! । [भर्तः ! एतानि मुनिसङ्घैरनवचितपूर्वाणि पुष्पाणि परामृष्टानि चन्द्रादित्यकिरणैरपरिमर्दितानि । बिभीमो भर्तः ! ।]

दामोदरः—पूर्वं दृष्टभया वित्रस्तास्तपस्विन्यः । न भेतव्यं न भेतव्यम् । इदानीं खलु मत्करस्पर्शनात् सौम्यभावमुपगतानि गृह्यताम् ।

दामोदर—लौट जाओ ।

कालिय—जैसी भगवान नारायण की इच्छा ।

(सपरिवार प्रस्थान)

दामोदर—मैं भी नद से चुने गए पुष्प गोपकुमारियों को देता हूँ ।

सब—यह स्वामी हम लोगों के हृदय को आनन्दित करते हुये स्वस्थ शरीर से इधर आ रहे हैं । स्वामी की जय हो ।

संकर्षण— भाग्य से गो-ब्राह्मण का कल्याण हुआ ।

दामोदर—पुष्पों को ग्रहण करें ।

सब—स्वामिन् , पहले कभी मुनियों ने इन पुष्पों को चुना नहीं और सूर्य और चन्द्र की किरणों के अतिरिक्त किसी ने भी इन्हें नहीं छुआ है । डर लगता है स्वामिन् ।

दामोदर—पहले से ही ये तपस्विनियाँ भय से त्रस्त थीं । (अब) नहीं डरना चाहिए, नहीं डरना चाहिए । इस समय मेरे हाथ के स्पर्श से ये पुष्प सौम्यता को प्राप्त हो गए हैं, (अतः इन्हें) ले लो ।

सर्वाः—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(प्रविश्य)

भटः—भो गोपालक ! क गतो नन्दगोपपुत्रः ।

गोपालकः—एषो भट्टा कालिअं णाम महाणाअं परिपीडिअ गोवकण्णआहि परिवुदो ठ्ठिओ । [एष भर्ता कालियं नाम महानागं परिपीड्य गोपकन्यकाभिः परिवृतः स्थितः ।]

भटः—(उपगम्य) भो नन्दगोपपुत्र ! अनुगतार्थनामधेयस्य महाराजस्योग्रसेनस्य पुत्रः कंसराजो भवन्तमाज्ञापयति ।

दामोदरः—कथमाज्ञापयतीति ।

भटः—मथुरायां धनुर्महो नाम महोत्सवो भविष्यति । तमनुभवितुं सपरिजनाभ्यां भवद्भ्यामागन्तव्यमिति ।

दामोदरः—आर्य ! अयं ननु देवरहस्यकालः ।

सङ्कर्षणः—शीघ्रमिदानीं गमिष्यावः ।

दामोदरः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । एष भोः !

सब—जैसी स्वामी आज्ञा देते हैं ।

(प्रवेश करके)

भट—हे गोपालक नन्दगोपपुत्र कहाँ गया ।

गोपालक—यह स्वामी, कालिय नामक नाग का मर्दन करके गोपकुमारियों से घिरा हुआ खड़ा है ।

भट—(पास जाकर) हे नन्दगोपपुत्र ! सार्थक नाम वाले उग्रसेन महाराज के पुत्र राजा कंस ने आपको आज्ञा दी है ।

दामोदर—क्या आज्ञा दे रहा है ।

भट—मथुरा में महाधनु नामक महोत्सव होगा उसमें आपको परिवारसहित उपस्थित होना चाहिए ।

दामोदर—आर्य, यह देवताओं के रहस्य का समय है ।

संकर्षण—हम दोनों अब शीघ्र चलेंगे ।

दामोदर—बहुत ठीक । उत्तम विचार है । अरे यह—जिसका रत्नखचित

प्रभ्रष्टरत्नमुकुटं परिकीर्णकेशं
विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रम् ।
आकृष्य कंसमहमद्य दृढं निहन्मि
नागं मृगेन्द्र इव पूर्वकृतावलेपम् ॥ १३ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

चतुर्थोऽङ्कः ।

भटमुखेन कंसादेशमाकर्ण्य कृष्णः कंसहननकालं सूचयति—प्रभ्रष्टेति ।

प्रभ्रष्टरत्नमुकुटं—प्रभ्रष्टं = पतितं रत्नमुकुटं = रत्नखचितं मुकुटं = शिरोभूषणं यस्य तं परिकीर्णकेशं—परिकीर्णाः = विसृताः केशाः = कचाः यस्य तं विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रम्—विच्छिन्नो = भग्नो हारो = मुक्तावली पतितं निपतितम् अङ्गदं = केयूरं 'केयूरमङ्गदं तुल्ये अङ्गुलीयकमूर्मिका ।' अमरः । सूत्रं यस्य तं कंसं = कंसाभिधं शत्रुम् आकृष्य = मञ्चादपकर्षणं कृत्वा अहं = कृष्णः अद्य = इदानीं पूर्वकृतावलेपं—पूर्वं = प्राक् कृतो = विहितः अवलेपः = गर्वः येन तम् नागं = करिणं मृगेन्द्र इव = सिंह इव 'सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यः ।' अमरः । दृढं = निश्चितं निहन्मि = घातयामि ॥ १३ ॥

मुकुट गिर गया है, जिसके केश बिखर गए हैं, मुक्तावली टूट गई है, केयूर गिर गए हैं, उस कंस को सिंहासन से खींच कर मैं वैसे ही मारूँगा जैसे गर्वीले हाथी को सिंह मारता है ॥ १३ ॥

(सब का प्रस्थान)

चतुर्थ अंक समाप्त

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति राजा ।)

राजा—

श्रुत्वा व्रजे विपुलविक्रमवीर्यसत्त्वं
दामोदरं सह बलेन समाचरन्तम् ।
आदिश्य कार्मुकमहं तमिहोपनीय
मल्लेन रङ्गगतमद्य तु घातयामि ॥ १ ॥

ध्रुवसेन ! ध्रुवसेन !

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

नृपतिः कंसः बलकेशवौ निहन्तुं व्याजन्निरूपयति—श्रुत्वेति ।

व्रजे = व्रजभूमौ विपुलविक्रमवीर्यसत्त्वं—विपुलं = महत् विक्रमो = पराक्र वीर्यं = शौर्यं सत्त्वं = बलं यस्य तं दामोदरं = श्रीकृष्णं बलेन = बलदेवेन सह = साकं समाचरन्तम्=आगच्छन्तं श्रुत्वा=निशम्य तं = श्रीकृष्णं कार्मुकं = धनुर्व्याजेन इह = अस्मिन् स्थाने उपनीय = आहूय रङ्गगतं = मल्लशालाप्राप्तं दामोदरं मल्लेन = चाणूरादिना आदिश्य = आदेशं कृत्वा अहं = कंसः अद्य दामोदरं घातयामि = निधनं प्रापयिष्यामि ॥ १ ॥

(राजा का प्रवेश)

राजा—व्रज में अतुल पराक्रमशाली एवं शौर्यवान दामोदर को बलराम के साथ आता हुआ सुनकर उन्हें धनुष के बहाने से यहाँ बुलाकर मल्लशाला में पहलवानों को आदेश देकर मैं कृष्ण को मरवा देता हूँ ॥ १ ॥

ध्रुवसेन, ध्रुवसेन ।

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो।

राजा—ध्रुवसेन ! किमागतो नन्दगोपपुत्रः ।

भटः—श्रोतुमर्हति महाराजः—प्रविशन्नेव दामोदरः ससङ्कर्षणो गोपजनपरिवृतो रजकेभ्यो वस्त्राण्याच्छिद्य गृहीतवानिति श्रुत्वा महामात्रेणोत्पलापीडो नाम गन्धहस्ती सञ्चोदितस्तमभिघातयितुम् । ततः,

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य सभीतगोपालकवृन्दमध्ये ।
बालो बलेनाद्रिनिभं गजेन्द्रं दन्तं समाकृष्य जघान शीघ्रम् ॥ २ ॥

राजा—कथं जघानेति । गच्छ । भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । एष इदानीं नन्दगोपपुत्र उत्सवाधिकारोच्छ्रितध्वजपताकमवसक्तमाल्यदामालङ्कृतमुत्थापितागुरुधूपसमाकुलं राजमहापथं प्रविश्य राजकुलद्वारे

प्रविशन्नेव कुवलयापीडं हतवानिति सूचयति भटो नृपं कंसं—तमापतन्तमिति—सभीतगोपालकवृन्दमध्ये—सभीतानां=भयार्तानां गोपालकानां=गोपदारकाणां वृन्दं = समूहः तस्य मध्ये = अन्तः-आयान्तं—गजेन्द्रं समीक्ष्य = दृष्ट्वा बालः = कृष्णः अद्रिनिभम् अद्रेः = पर्वतस्य निभं = तुल्यं = पर्वताकारम् आपतन्तम् = आगच्छन्तं तं = गजेन्द्रम् उत्पलापीडं सहसा झटिति समीक्ष्य = दृष्ट्वा बलेन = पराक्रमेण शीघ्रं तूर्णं दन्तं = हस्तिविषाणं समाकृष्य = उत्पाट्य जघान = ममार ॥

राजा—ध्रुवसेन ! क्या, नन्द गोप का पुत्र यहाँ आया है ?

भट—महाराज सुनें, (नगर में) प्रवेश करते ही दामोदर और बलराम ने ग्वालबालों के साथ धोबी से वस्त्र छीन कर ले लिया, यह सुनकर महामात्य ने उत्पलापीड नामक गन्धहस्ती को उन्हें मारने के लिए प्रेरित किया। तब अत्यन्त भयभीत ग्वालबालों के बीच पर्वत के समान गजराज को एकाएक आता हुआ देखकर बालक (कृष्ण) ने बलपूर्वक गजराज के दाँत को तोड़ कर उसे मार डाला ॥ २ ॥

राजा—क्या, मार डाला ? जाओ फिर से खबर की जाँच करो।

भट—जैसी महाराज की आज्ञा। (जाकर और पुनः आकर) महाराज की जय हो। इस समय दामोदर उत्सव के योग्य ध्वजा और पताका से युक्त पुष्प और माला से अलंकृत, अगरु और धूप की गन्ध से युक्त विस्तृत राजमार्ग पर पहुँचकर

गन्धसमुद्रावसक्तहस्तां मदनिकां नाम कुब्जिकां दृष्ट्वा तस्या हस्ताद् गन्धमादाय स्वगात्रमनुलिप्य तेनैव हस्तेन कुब्जस्यानुमार्जनेन विगत-कुब्जभावां तां कृत्वा मालाकारापणेभ्यः पुष्पाण्याहृत्यावबध्य धनुः-शालाभिमुखो गतः ।

राजा—किन्नु खलु तेन व्यवसितम् । तेन हि शीघ्रं गच्छ । भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । धनुःशालारक्षकेण सिंहबलेन वार्यमाणस्तं कर्णमूले प्रहृत्य हत्वा धनुः समादाय द्विखण्डं कृत्वा साम्प्रतमुपस्थानाभिमुखो गतः । स हि,

आपीडदामशिखिबर्हविचित्रवेषः
पीताम्बरः सजलतोयदराशिवर्णः ।

कंसं प्रत्यागच्छतो दामोदरस्य भटः स्वरूपं वर्णयति—आपीडदामेत्यादिना ।

सजलतोयदराशिवर्णः—तोयं ददातीति तोयदः जलेन सहितः स चासौ तोयदश्च तस्य राशिः = समूहः तस्य वर्ण इव वर्णो = रूपं यस्य सः पीताम्बरः-पीतं = कनकाभम् अम्बरं = वस्त्रं यस्य सः आपीडदामशिखिबर्हविचित्रवेषः—

राजकुल के दरवाजे पर गन्धादि को लिए हुए मदनिका नाम की कुब्जा को देखकर उसके हाथ से सुगन्धित द्रव्य लेकर अपने अंगों पर लेप करके तथा उसी हाथ से कुब्जा का कूबड़ापन दूर करके फूलों के बाजार से पुष्प लेकर और उन्हें (मालियों को) मारकर धनुष शाला की ओर गया है ।

राजा—उसने वहाँ क्या किया, जल्दी जाओ पुनः सब समाचार प्राप्त करो ।

भट—जैसी महाराज की आज्ञा । (जाकर और पुनः प्रवेश करके) महाराज की जय हो । धनुष शाला के रक्षक सिंहबल के मना करने पर उसके कान पर प्रहार करके और मारकर धनुष को लेकर उसके दो टुकड़े करके इस समय सभा-मण्डप की ओर गया ।

वह तो—

जलपूर्ण मेघ-समूह की भाँति श्याम वर्ण वाले, पीले वस्त्र को धारण किए हुए,

अभ्येति रोषपरिवृत्तविशालनेत्रो
रामेण सार्धमिह मृत्युरिवावतीर्णः ॥ ३ ॥

राजा—सावेगमिव मे हृदयम्। गच्छ, यथानिर्दिष्टौ चाणूरमुष्टिकौ प्रवेशय, वृष्णिकुमाराणां सन्नाहमाज्ञापय।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रान्तः।)

राजा—यावदहमपि प्रासादमारुह्य चाणूरमुष्टिकयोर्युद्धं पश्यामि। (आरुह्य) मधुरिके ! विघाट्यतां द्वारम्।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि। [यद् भर्ताज्ञापयति।]

(राजा प्रविश्योपविशति।)

(ततः प्रविशतश्चाणूरमुष्टिकौ।)

आपीडदाम्ना = शेखरस्रजा शिखिबर्हेण = मयूरपिच्छेन च विचित्रः = अद्भुतो वेषः = स्वरूपं यस्य स रोषपरिवृत्तविशालनेत्रः—रोषेण = क्रुधा परिवृत्ते = अन्यथावृत्ते विशाले = विपुले नेत्रे = नयने यस्य सः मृत्युरिव = अन्तक इव अवतीर्णः = आविर्भूतः कृष्णः रामेण = बलरामेण साकं = सार्धम् इह = त्वत्समीपे अभ्येति = आगच्छति। त्वामपि विनाशयिष्यति अतस्त्वं स्वां तनुं रक्षेति भावः॥

पुष्प मालाओं और मयूर पंखों से अद्भुत वेष बनाए हुए, क्रुद्ध विशाल नेत्रों वाले बलराम के साथ यहाँ (साक्षात्) मृत्यु ही उत्पन्न हो गया है ॥ ३ ॥

राजा—मेरा हृदय धड़क रहा है। जाओ, पहले बतलाए चाणूर और मुष्टिक को भेजो। (यादव कुमारों को) युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश दो।

भट—महाराज की जैसी आज्ञा। (प्रस्थान)

राजा—मैं भी भवन पर चढ़ कर चाणूर और मुष्टिक का युद्ध देखता हूँ। (चढ़कर) मधुरिके, दरवाजा खोल दो।

प्रतिहारी—जैसी स्वामी की आज्ञा।

(राजा प्रवेश करके बैठता है)

(चाणूर और मुष्टिक का प्रवेश)

चाणूरः—

एसो म्हि जुद्धसज्जो मत्तो हत्थीव दप्पसम्पुण्णो ।
भञ्जेमि अज्ज बालं दामोदलं लंगमज्झम्मि ॥ ४ ॥
[एषोऽस्मि युद्धसज्जो मत्तो हस्तीव दर्पसंपूर्णः ।
भनज्म्यद्य बालं दामोदरं रङ्गमध्ये ॥]

मुष्टिकः—

लोहमयमुट्ठिहत्थो णामेण अ मुट्ठिओ लुट्ठि ।
पादेमि अज्ज लामं गिलिवलकूटं जहा वज्जो ॥ ५ ॥
[लोहमयमुष्टिहस्तो नाम्ना च मुष्टिको रुष्टः ।
पातयाम्यद्य रामं गिरिवरकूटं यथा वज्रः ॥]

चाणूरः सगर्वं स्वबलं निर्वक्ति—एषोऽस्मीति ।

दर्पसम्पूर्णः—दर्पेण = गर्वेण सम्पूर्णः = पूरितः हस्ती इव = नाग इव मत्तः= मदेनेत्यर्थः । युद्धसज्जः—युद्धाय = मल्लयुद्धाय सज्जः=बद्धपरिकरः एषः चाणूरोऽहमस्मि । अद्य रङ्गमध्ये = मल्लयुद्धभूमौ बालम् = अर्भकं दामोदरं भनज्मि = चूर्णयिष्यामि ॥ ४ ॥

मुष्टिकः स्वकार्यं प्रकटयति—लोहमयमुष्टीत्यादिना ।

लोहमयमुष्टिहस्तः—लोहमयी = अयस्सारमयी मुष्टिः हस्ते = करे यस्य सः नाम्ना च = अभिधया च मुष्टिकः रुष्टः = क्रुद्धस्सन् अद्य = इदानीं गिरिवरकूटं = पर्वतशिखरं यथा = येन प्रकारेण वज्रः = कुलिशं पातयति तथा रामं = बलरामं पातयामि = हनिष्यामि ॥ ५ ॥

चाणूर—यह मैं मदमस्त हाथी की भाँति गर्व से भरा हुआ युद्ध करने के लिए तैयार हूँ । आज मैं बालक दामोदर को मल्लशाला में चूर-चूर कर दूँगा ॥४॥

मुष्टिक—लोहे की भाँति कठिन मुक्कों वाला अत्यन्त क्रुद्ध मैं मुष्टिक नामक योद्धा बलराम को वैसे ही गिरा दूँगा जैसे महान पर्वतों की चोटी को वज्र गिरा देता है ॥ ५ ॥

भटः—एष महाराजः । उपसर्पेतां भवन्तौ ।

उभौ—(उपेत्य) जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

राजा—चाणूरमुष्टिकौ ! सर्वप्रयत्नेन युवाभ्यामानृण्यं कर्तव्यम् ।

उभौ—सुणादु भट्टा । अड्ढिदकरणसन्धाबन्धप्पहारेहि जुद्धविसेसेहि सिद्धिं गच्छामो । हं पेक्खदु भट्टा । [शृणोतु भर्ता । (अड्ढिद ?) करण-सन्धाबन्धप्रहारैर्युद्धविशेषैः सिद्धिं गच्छामः । हं पश्यतु भर्ता ।]

राजा—बाढमेवं क्रियताम् । ध्रुवसेन ! प्रवेश्येतां गोपदारकौ ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशतो दामोदरसङ्कर्षणौ ध्रुवसेनेन सह ।)

दामोदरः—आर्य !

मर्त्येषु जन्म विफलं मम तानि घोषे
कर्माणि चाद्य नगरे धृतये न तावत् ।

दामोदरः स्वभूतलागमनकार्यं स्मरति—मर्त्येषु जन्मेत्यादिना ।

मम = दामोदरस्य मर्त्येषु = मनुष्येषु जन्म = आविर्भावः तावत् = तावत् कालिकं विफलं = मोघं घोषे = पल्ल्यां नगरे च = पत्तने च तानि कर्माणि = विहितानि कर्माणि अद्य (तावत्) न धृतये = धैर्याय यावत् = यावत्कालं जन्मान्तरा-

---

भट– यह महाराज हैं । तुम दोनों चले जाओ ।

दोनों–(जाकर) स्वामी की जय हो ।

राजा—चाणूर और मुष्टिक ! सब प्रकार से प्रयत्न करके तुम दोनों मुझे कर्ज से छुटकारा दिलाओ ।

दोनों—स्वामी सुनें, हम अनेक करणसंध और आबन्ध प्रहारों से विशेष युद्ध के द्वारा सफलता प्राप्त करेंगे । अच्छा स्वामी, देखें ।

राजा—ठीक, ऐसा ही करो । ध्रुवसेन, गोपकुमारों को अन्दर भेजो ।

भट—जैसी महाराज की आज्ञा । (प्रस्थान)

(ध्रुवसेन के साथ दामोदर और संकर्षण का प्रवेश)

दामोदर—आर्य—

मनुष्य लोक में मेरा जन्म निष्फल है । उस बस्ती में और इस नगर में मुझे

यावन्न कंसहतकं युधि पातयित्वा
जन्मान्तरासुरमहं परिकर्षयामि ॥ ६ ॥

सङ्कर्षणः—

प्रविश्य रङ्गं कृतलोहमुष्टिं तं मुष्टिना मुष्टिकमद्य रुष्टम् ।
हत्वा चरिष्याम्यनिलप्रचण्डः प्रलम्बमम्भोदमिवान्तरिक्षे ॥ ७ ॥

भटः—एष महाराजः । उपसर्पेतां भवन्तौ ।

उभौ—आः कस्य महाराजः ।

भटः—सर्वस्य जगतोऽस्माकं च ।

दामोदरः—अद्यप्रभृति न भविष्यति ।

सुरं = जन्मान्तरीयदानवं कंसहतकं = नीचकंसं युधि = संग्रामे पातयित्वा = निपात्य (यावत्) अहं = दामोदरः न परिकर्षयामि = नहि तस्य आकर्षणं करोमि ॥ ६ ॥

बलदेवः अद्य रङ्गे कर्तव्यकर्म विद्योतयति—प्रविश्येति ।

अद्य = अस्मिन् दिवसे रुष्टं = क्रुद्धं कृतलोहमुष्टिं—कृता = विहिता लोहवत् अयस्सारवत् कठिना मुष्टिर्येन तम् = प्रसिद्धं मुष्टिकम् = एतन्नामकं मल्लं रङ्गमध्यं प्रविश्य = तत्र गत्वा अन्तरिक्षे = वियति अनिलप्रचण्डः = प्रखरवायुः प्रलम्बं = लम्बमानम्—अम्भोदं = मेघम् इव = यथा हत्वा = विनाश्य चरिष्यामि = विचरणं करिष्यामि ॥ ७ ॥

अपने कर्मों से तब तक धैर्य नहीं जब तक जन्मजन्मान्तर के राक्षस पापी कंस को युद्ध में गिराकर मारता नहीं ॥ ६ ॥

संकर्षण—आज क्रुद्ध लोहे के समान कठिन मुष्टि वाले मुष्टिक को मल्लशाला में जाकर आकाश में जैसे झुके हुए बादलों को झंझावात छिन्न-भिन्न करता है वैसे मैं उसका विनाश कर डालूँगा ॥ ७ ॥

भट—यह महाराज हैं, तुम दोनों आओ ।

दोनों—अरे, किसका महाराज ?

भट—सबका, सारे संसार का और हम लोगों का ।

दामोदर—आज से नहीं रह जाएगा ।

भटः—जयतु महाराजः । एतौ तौ ।

राजा—(विलोक्य) अयं स दामोदरः । अहो,

श्रीमान् मदान्धगजधीरविलासगामी
श्यामः स्थिरांसभुजपीनविकृष्टवक्षाः ।
पूर्वं श्रुतानि चरितानि न चित्रमस्य
लोकत्रयं हि परिवर्तयितुं समर्थः ॥ ८ ॥

अयं नु ललितगम्भीराकृतिः पूर्वजोऽस्य राम इति श्रूयते ।

राजा श्रीकृष्णमवलोक्य कृतपूर्वकार्यं तदप्यधिकं कर्तुं समर्थोऽयमिति विवृणोति—श्रीमानिति ।

मदान्धगजधीरविलासगामी—मदान्धः—मदेन अन्धः स चासौ गजश्च तद्वत् धीरं विलासशीलं गमनमस्ति अस्य = मत्तगजेन्द्रगम्भीरलीलागमनकारी स्थिरांसभुजपीनविकृष्टवक्षाः—स्थिरौ=दृढौ अंसौ = स्कन्धौ भुजौ = करौ पीनं = मांसलं विकृष्टं = विस्तृतं वक्षः = वक्षःस्थलं यस्य सः श्रीमान् = श्रीरस्ति अस्य = शोभायुक्तः श्यामः = श्यामवर्णः अस्य = दामोदरस्य पूर्वं = पुरा श्रुतानि = कर्णगोचरीकृतानि चरितानि = कार्याणि न चित्रं = नाश्चर्यजनकं मुधेति यावत् । किन्तु हि = यतः अयं = दामोदरः लोकत्रयम् = त्रिभुवनं परिवर्तयितुम् = अन्यथा कर्तुं समर्थः = शक्तः ॥ ८ ॥

पूर्वजः = अग्रजः रामः = बलरामः—

भट—महाराज की जय हो । यह दोनों यहाँ हैं ।

राजा—(देखकर) यह वही दामोदर है ! अरे,

मदमत्त गजराज की भाँति गम्भीर एवं सविलास गति वाले दृढ़ स्कन्ध, भुजा और मांसल तथा विस्तृत वक्षःस्थल वाले, शोभा से युक्त, कृष्ण वर्ण के इस दामोदर के पहले सुने हुए चरित्र आश्चर्यजनक (झूठे) नहीं हैं किन्तु यह तीनों लोक को परिवर्तित करने में समर्थ है ॥ ८ ॥

यह सुन्दर गम्भीर आकृति वाले इनके अग्रज राम हैं, ऐसा सुना जाता है ।

अभिनवकमलामलायताक्षः शशिनिभमूर्तिरुदारनीलवासाः ।
रजतपरिघवृत्तदीर्घबाहुश्चलदसितोत्पलपत्रचित्रमालः ॥ ९ ॥

दामोदरः—आर्य ! एतावेवावाभ्यां युद्धसन्नद्धाविति मन्ये ।

सङ्कर्षणः—भवितव्यम् ।

राजा—ध्रुवसेन ! प्रवर्ततां युद्धम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः (मालां क्षिपति ।)

मल्लौ—अङ्घो ! वादेथ वादेथ सङ्खपटहाणि । [अङ्घो ! वादयत वादयत सङ्खयपटहान् ।]

दामोदराग्रजं बलरामं दृष्ट्वा कंसः तं वर्णयति—अभिनवेत्यादिना । अयं बलरामः अभिनवकमलामलायताक्षः—अभिनवञ्च = नूतनञ्च तत् कमलं = पद्मं तद्वत् अमले = स्वच्छे आयते = दीर्घे अक्षिणी = नेत्रे यस्य सः । 'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः ।' अमरः । शशिनिभमूर्तिः—शशिनिभा = चन्द्रतुल्या मूर्तिः = विग्रहः यस्य सः उदारनीलवासाः = उदारं = रुचिरं नीलं = नीलवर्णं वासः = वस्त्रं यस्य सः रजतस्य = रूप्यस्य 'दुर्वर्णं रजतं रूप्यं खर्जूरं श्वेतमित्यपि ।' अमरः । परिघः = परिघातनः ।' अमरः । तद्वत् वृत्तौ = वर्तुलौ दीर्घौ = आयतौ बाहू = करौ यस्य सः चलदसितो०—चलत् = परिचलत् यत् असितोत्पलपत्रं = नीलकमलदलं तस्य चित्रा माला = विचित्रा स्रक् यस्य सः एवंभूतो बलरामो वर्तते इति शेषः ॥ ९ ॥

नूतन और निर्मल कमल की भाँति दीर्घ नेत्रों वाला, चन्द्र की भाँति विग्रह वाला, रुचिर नीले वस्त्रों को धारण किए हुए रुपहले परिघ की भाँति वर्तुल एवं विशाल भुजाओं वाला (यह बलराम) नील कमल की विचित्र माला को धारण किए हुए है ॥ ९ ॥

दामोदर—आर्य, मालूम होता है हमारे साथ युद्ध के लिए यही लोग तैयार हैं।

संकर्षण—होना चाहिए ।

राजा—ध्रुवसेन, युद्ध प्रारम्भ करो ।

भट—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(माला फेंकता है)

दोनों मल्ल—अरे, बजाओ, युद्ध-दुन्दुभियों को बजाओ ।

चाणूरः—एहि दामोदल ! अज्ज मे भुजजुअल्लेहि सिद्धिं गच्छ।
[एहि दामोदर ! अद्य मे भुजयुगलेन सिद्धिं गच्छ ।]

दामोदरः—

प्राप्तोऽस्मि तिष्ठ मम वेगमिमं सहस्व

मुष्टिकः—ए ए लाम ! अज्ज मे मुट्ठिपिट्ठिगत्तगलिअलुहिलपडलमज्जो जीविअं उज्झसि। [ए ए राम ! अद्य मे मुष्टिपिष्टगात्रगलितरुधिरपटलमज्जो जीवितमुज्झसि]

सङ्कर्षणः—

त्वामद्य मुष्टिक ! यमाय निवेदयामि ।

(सर्वे नियुद्धं कुर्वन्ति ।)

दामोदरः—(चाणूरं निहत्य)

भग्नास्थिरेष निहतो

सङ्कर्षणः—

निहतो मयापि

दामोदरः कथयति—हे चाणूर ! अहं तव भुजयुगलमध्ये—

प्राप्तः = आगतः अस्मि = भवामि तिष्ठ = स्थिरो भव, मम = दामोदरस्य इमं = दीयमानं वेगं = प्रहारवेगं सहस्व = अनुभव। मुष्टिकं प्रति संकर्षणः वक्ति—हे मुष्टिक = मल्ल अद्य = अधुना त्वां = भवन्तं यमाय = अन्तकाय निवेदयामि = यमपुरं प्रेषयामीति यावत्। दामोदरः चाणूरं निहत्य कथयति—एषः = चाणूरः भग्नास्थिः = चूर्णितशरीरः, निहतः = विनाशितः संकर्षणः मयाऽपि मुष्टिको निहतः

चाणूर—आओ दामोदर, आज मेरी दोनों भुजाओं से सफलता को प्राप्त करो।

दामोदर—मैं आया ठहरो, मेरे इस प्रहार को सहो।

मुष्टिक—हे, हे राम, आज मेरे मुक्के से पिसे हुए अंगों वाला रुधिर से भींगा हुआ तू प्राण छोड़ेगा।

संकर्षण—(अरे) मुष्टिक, आज तुझे मैं यमराज के हवाले करूँगा।

(सब मल्लयुद्ध करते हैं ।)

दामोदर—(चाणूर को मारकर)

यह टूटी हुई हड्डियों वाला मरा पड़ा है।

संकर्षण—मैंने भी इसका वध कर दिया।

दामोदरः—

कंसासुरं च यमलोकमहं नयामि ॥ १० ॥

(प्रासादमारुह्य कंसं शिरसि निगृह्य पातयित्वा) एष एष दुरात्मा कंसः,

विस्तीर्णलोहितमुखः परिवृत्तनेत्रो
भग्नांसकण्ठकटिजानुकरोरुजङ्घः ।
विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रो
वज्रप्रभग्नशिखरः पतितो यथाद्रिः ॥ ११ ॥

= व्यापादितः । दामोदरः कथयति—अहं दामोदरः कंसासुरं = कंसाभिधं दानवं यमलोकं = यमपुरं नयामि = प्रेषयामि ॥ १० ॥

दामोदरः निधनगतं कंसस्वरूपं विवृणोति—विस्तीर्णेति ।

(एषः कंसः) विस्तीर्णलोहितमुखः—विस्तीर्णं = निःसृतं लोहितं = रक्तं यस्मात्तद् मुखम् = आननं यस्य सः 'आननं लपनं मुखम्' अमरः । परिवृत्तनेत्रः—परिवृत्ते = पर्यावर्तिते नेत्रे = नयने यस्य भग्नांसकण्ठकटिजानुकरोरुजंङ्घः-भग्नं = त्रुटितम् अंसः = स्कन्धः कण्ठः = गलः कटिः = श्रोणिः जानुः = ऊरुपर्व करः = बाहुः ऊरुः = सक्थि जंघा = प्रसृता एषां समाहारः तद् यस्य सः विच्छिन्नहारः-विच्छिन्नः = त्रुटितः हारः = मणिमाला पतितः = निपतितः अङ्गदः = केयूरः लम्बं = लम्बमानं सूत्रं = यज्ञोपवीतं यस्य सः, वज्रप्रभग्नशिखरः—वज्रेण = कुलिशेन प्रभग्नं = खण्डितं शिखरं = कूटं यस्य सः अद्रिः=गिरिः 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावा० ।' अमरः । यथा = येन प्रकारेण (पतति तथा अयं कंसः) पतितः = निपतितः प्रतिभातीति शेषः ॥ ११ ॥

दामोदर—मैं असुर कंस को यमलोक पहुँचा रहा हूँ ॥ १० ॥

(भवन पर चढ़कर कंस को सिर पकड़ कर गिरा कर)

यह, यह दुरात्मा कंस है ।

इसके मुख से खून बह रहा है, नेत्र पर्यावर्तित हैं, स्कन्ध, कण्ठ, कमर, जानु, हाथ, ऊरु और जंघा फूट गए हैं । मणिमाला टूट गई है, केयूर गिर गए हैं, यज्ञोपवीत भी गिर गया है और वज्र के द्वारा यह कंस चूर किए गए शिखर वाले पर्वत की भाँति गिरा हुआ मालूम होता है ॥ ११ ॥

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

भो भो वृष्णियोधाः ! अनावृष्टिशिवकहृदिकपृथुकसोमदत्ताक्रूरप्रमुखाः ! अयं खलु भर्तृपिण्डनिष्क्रयस्य कालः । शीघ्रमागच्छन्तु भवन्तः ।

दामोदरः—आर्य ! संवार्यतां सैन्यम् ।

सङ्कर्षणः—अयमयं वारयामि ।

द्रुततुरगरथेभभ्रान्तयोधोग्रनादं
विलसदमलखड्गप्रासशक्त्यृष्टिकुन्तम् ।

संकर्षणः दोर्भ्यां सैन्यं क्षोभयति—द्रुततरेत्यादि ।

द्रुततुरगरथेभभ्रान्तयोधोग्रनादं—द्रुताः = शीघ्रगामिनः तुरगाः=अश्वाः रथाः= स्यन्दनानि इभाः = गजाः भ्रान्तयोधाः = सम्भ्रान्तसैनिकाः तैः उग्रः = क्रूरः नादः = शब्दो यस्मिन् तत् विलसदमलखड्गप्रा०—विलसद्=शोभमानम् अमलं= निर्मलं खड्गः = असिः 'खड्गे तु निस्त्रिंशचन्द्रहासासिरिष्टयः ।' अमरः । प्रासः= कुन्तः 'प्रासस्तु कुन्तः ।' अमरः । शक्तिः, ऋष्टिः = आयुधविशेषः कुन्तः एषां

(नेपथ्य में)

हा, हा महाराज ।

(पुनः नेपथ्य में)

अरे, हे यादव कुल के योद्धाओं, अनावृष्टि, शिवक, हृदिक, पृथुक, सोमदत्त और अक्रूर आदि ! यह स्वामी के ऋण चुकाने का समय है । आप सब जल्दी आइए ।

दामोदर—आर्य ! सेना को दूर कीजिए ।

संकर्षण—यह हटा रहा हूँ ।

शीघ्रगामी घोड़े, रथ, गज और विक्षिप्त सैनिकों के कोलाहल से युक्त, निर्मल तलवार, भाले, शक्ति, ऋष्टि, कुन्त आदि से शोभित सेना को मैं अपनी भुजाओं से

पवनबलविकीर्णं फेनजालोर्मिमालं
जलनिधिमिव दोर्भ्यां क्षोभयाम्येष सैन्यम् ॥ १२ ॥

(ततः प्रविशति वसुदेवः ।)

वसुदेवः—भो भो मधुरावासिनः ! अलमलं साहसेन ।

ज्येष्ठोऽयं मम तनयस्तु रौहिणेयो
देवक्यास्तनयमिमं च किं न वित्थ ।
सन्नाहं त्यजत किमायुधैश्च कार्यं
कंसार्थं स्वयमिह विष्णुराजगाम ॥ १३ ॥

समाहारः यस्मिन् तत् । पवनबलविकीर्णं—पवनस्य = वायोः बलेन = सामर्थ्येन विकीर्णः = प्रक्षिप्तः तम् फेनजालोर्मिमालं—फेनानां = जलविकृतीनां जालः = समूहः ऊर्मिमाला—विद्यते यस्मिन् तम् एवंभूतं जलनिधिं = समुद्रम् इव = यथा एषः = अहम् सैन्यं = सेनां दोर्भ्यां = बाहुभ्यां क्षोभयामि = क्षुभितं करोमि ॥ १२ ॥

वसुदेवः सेनां विनिवार्य बलदेवस्य परिचयं ददाति—ज्येष्ठोऽयमिति ।

अयं = योद्धा रौहिणेयः—रोहिण्याः = मम भार्यायाः अपत्यं = रोहिणीपुत्रः मम = वसुदेवस्य ज्येष्ठः = प्रथमः तनयः = सूनुः अस्तीति शेषः । इमं = श्रीकृष्णं देवक्याः = मम भार्यायाः तनयं = पुत्रं किन्न वित्थ = किं न जानीथ ? सन्नाहं = युद्धोद्योगं त्यजत = वारयत आयुधैः = हेतिभिः किं कार्यं = किं प्रयोजनम् । इह = अस्मिन् संसारे कंसार्थं = कंसवधार्थं स्वयं = निजस्वरूपेण विष्णुः = परमात्मा आजगाम = अवतीर्णः ॥ १३ ॥

से ऐसा क्षुभित करूँगा जैसे तूफान समुद्र के फेनजाल और तरंगावलियों को छिन्न-भिन्न कर देता है ॥ १२ ॥

(वसुदेव का प्रवेश)

वसुदेव—अरे, हे, मथुरावासियो ! अधिक साहस न करो ।

यह (मेरी पत्नी) रोहिणी का पुत्र मेरा पहला कुमार है । इस (मेरी पत्नी) देवकी के पुत्र को क्या नहीं जानते ? युद्धोद्योग को छोड़ दो और शस्त्रों का क्या काम । इस लोक में कंस (के वध) के लिए स्वयं भगवान विष्णु अवतीर्ण हुए हैं ॥ १३ ॥

सङ्कर्षणः—(विलोक्य) अये तातः । तात ! सङ्कर्षणोऽहमभिवादये ।

दामोदरः—तात ! दामोदरोऽहमभिवादये ।

वसुदेवः—अक्षयविजयिनौ भवेतां भवन्तौ । सत्पुत्रजन्मफलमद्य प्राप्तवानस्मि ।

उभौ—अनुगृहीतौ स्वः ।

वसुदेवः—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयत्वार्यपुत्रः ।

वसुदेवः—अपविध्यन्तां कलेवराणि ।

भटः—यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः ।

गोपालकाः सर्वे—ही ही गोवालआणं रज्जं संवुत्तं । [ही ही गोपालकानां राज्यं संवृत्तम् ।]

वसुदेवः—कोऽत्र ।

भटः—जयत्वार्यपुत्रः ।

संकर्षण—(देखकर) अरे, पिता जी ! पिता जी, मैं संकर्षण (आपका) अभिवादन करता हूँ ।

दामोदर—पिताजी, मैं दामोदर (आपका) अभिवादन करता हूँ ।

वसुदेव—तुम दोनों सर्वदा विजयी रहो । आज मुझे सुपुत्रों के पैदा करने का फल प्राप्त हुआ ।

दोनों—हम लोग अनुगृहीत हुए ।

वसुदेव—यहाँ कौन है ?

(प्रवेश करके)

भट—आर्यपुत्र की जय हो ।

वसुदेव—इन शवों को फेंक दो ।

भट—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा ।

सब ग्वाले—ही, ही, ग्वालों का राज्य हो गया ।

वसुदेव—यहाँ कौन है ।

भट—आर्यपुत्र की जय हो ।

वसुदेवः—गच्छ, शीघ्रं दामोदरस्यादेशादनावृष्टिमाज्ञापय—महाराज-मुग्रसेनमपनीय निगलान्निर्वृत्ताभिषेकं कृत्वा प्रवेशयेति ।

भटः—यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः । (निष्क्रान्तः ।)

वसुदेवः—अये,

नदन्ति सुरतूर्याणि वृष्टिः पतति कौसुमी ।
कंसान्तकस्य पूजार्थं प्रायो देवाः समागताः ॥ १४ ॥

(नेपथ्ये)

श्रीमानिमां कनकचित्रितहर्म्यमालां
विस्तीर्णराजभवनापणगोपुराट्टाम् ।

वसुदेवः अन्तरिक्षपतितां सुमनोवृष्टिं दामोदरपूजार्थमेवेति प्रस्तौति—नदन्तीति । सुरतूर्याणि— सुराणां = देवतानां तूर्याणि = वाद्यप्रभेदाः नदन्ति = नादं कुर्वन्ति । कौसुमी—कुसुमस्य = पुष्पस्य—इयं कौसुमी = पुष्पमयी वृष्टिः = वर्षणं पतति = निपतति आकाशादिति शेषः । प्रायः = बाहुल्येन देवाः = अमराः कंसान्तकस्य—कंसस्य अन्तकः = कंसस्य मृत्युः तस्य = कंसारेः दामोदरस्येत्यर्थः । पूजार्थम् = अर्चनार्थं समागताः = संप्राप्ताः ॥ १४ ॥

नेपथ्यात् मथुराया रक्षार्थं प्रार्थयति—श्रीमानिति ।

कनकचित्रितहर्म्यमालां—कनकैः = सुवर्णैः चित्रिता = रचिता हर्म्याणां = धनिकगृहाणां माला = श्रेणिः यस्यां तां, विस्तीर्णराजभवनापणगोपुराट्टां—वि-

---

वसुदेव—जाओ, दामोदर की आज्ञा से अनावृष्टि को सूचित करो कि शीघ्र ही महाराज उग्रसेन को कारावास से निकाल कर उनका अभिषेक करके यहाँ भेज दे।

भट—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा । (प्रस्थान)

वसुदेव—अरे,

देव-दुन्दुभियाँ बज रही हैं, पुष्प की वृष्टि हो रही है, कंस के निधनकर्ता (कृष्ण) की पूजा के लिए देवता लोग आ पहुँचे हैं ॥ १४ ॥

(नेपथ्य में)

शोभा से पूर्ण कनक-विनिर्मित भवनों, विशाल राजभवन, बाजार, बहिर्द्वार एवं

पायात् सदैव मधुरां कमलायताक्ष-
स्त्रैलोक्यजित् सुरवरस्त्रिदशेन्द्रनाथः ॥ १५ ॥

वसुदेवः—भो भो मधुरावासिनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः । अस्य खलु दैत्येन्द्रपुरार्गलोत्पाटनपटोः सर्वक्षत्रपराङ्मुखावलोकिनो वसुदेवसम्भवस्य वासुदेवस्य प्रसादात् पुनरधिगतराज्यस्योग्रसेनस्य शासनमिदानीमवघुष्यते ।

सर्वे—प्रतिष्ठितमिदानीं वृष्णिराज्यम् ।

वसुदेवः—प्रवेश्यतां महाराजः ।

भटः—यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः । (निष्क्रान्तः ।)

स्तीर्णं = विस्तृतं राजभवनं = नृपसदनम्, आपणः = निषद्या 'आपणस्तु निषद्यायाम् ।' अमरः । गोपुरं = पुरद्वारं 'बहिर्द्वारं पुरद्वारं तु गोपुरम् ।' अमरः । अट्टः = क्षोमम् 'स्यादट्टः क्षोममस्त्रियाम् ।' अमरः । एषां समाहारैः यस्यां ताम् इमां = पुरो वर्तिनीं मधुराम् = एतन्नाम्नीं पुरीम् कमलायताक्षः—कमले = पद्मे इव आयते = विस्तृते अक्षिणी=नेत्रे यस्य सः त्रैलोक्यजित्—त्रैलोक्यं जयतीति = भुवयत्रयजेता सुरवरः—सुरेषु = देवेषु वरः = श्रेष्ठः त्रिदशेन्द्रनाथः—त्रिदशेन्द्राणां अमरेन्द्राणां नाथः = स्वामी श्रीमान् = परमेश्वरः सदैव = सर्वदैव पायात् = रक्षेत् ॥ १५ ॥

अटारी से युक्त मथुरा का, कमल की भाँति विशाल नेत्रों वाले, तीनों भुवनों को जीतने वाले, देवताओं श्रेष्ठ और इन्द्र के नाथ आप कल्याण करें ॥ १५ ॥

वसुदेव—हे, हे मथुरा वासियो ! आप सुनें, सुनें; दैत्यराज के नगर के बहिर्द्वार को तोड़ने में दक्ष, सब क्षत्रियों को परास्त करने वाले वसुदेव से उत्पन्न इस वासुदेव की कृपा से पुनः राज्य को प्राप्त करने वाले उग्रसेन का शासन इस समय घोषित होता है ।

सब—यादव कुल के राज्य की प्रतिष्ठा हो गई ।

वसुदेव—महाराज का प्रवेश हो ।

भट—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(ततः प्रविशत्युग्रसेनः ।)

उग्रसेनः—

चिरोपरोधसम्प्राप्तः क्लेशो मे केशिसूदनात् ।
अपनीतः स्ववीर्येण यथा विष्णोः शतक(तु? तो)ः ॥ १६ ॥

भगवत्प्रसादाद् व्यसनार्णवादुत्तारितोऽस्मि ।

(ततः प्रविशति नारदः ।)

नारदः—

कंसे प्रमथिते विष्णोः पूजार्थं देवशासनात् ।

उग्रसेनः वसुदेवप्रसादात् स्वक्लेशापनयनं सूचयति—चिरोपरोधेति ।

यथा = येन प्रकारेण विष्णोः = त्रिविक्रमस्य (वामनावतारे) स्ववीर्येण—स्वस्य = स्वकीयस्य वीर्यं = पराक्रमः तेन—स्ववीर्येण शतक्रतोः—शतम् = शतसंख्याकाः क्रतवः = यज्ञाः यस्य तस्य = इन्द्रस्य क्लेशः = दुःखम् अपनीतः = दूरीकृतः तथा केशिसूदनात्—केशिनं = दैत्यं सूदयतीति तस्मात् = केशिहन्तुः पराक्रमेण मे = मम = उग्रसेनस्य क्लेशः = सन्तापः चिरोपरोधसम्प्राप्तः—चिरोपरोधः = बहुकालावरोधस्तस्मात् सम्प्राप्तः = अधिगतः ॥ १६ ॥

नारदः इन्द्रलोकात् स्वागमनकारणं दर्शयति—कंसेति ।

कंसे = दुष्टनृपे प्रमथिते=विनाशिते देवशासनात्—देवस्य = इन्द्रस्य शासनम्=

(उग्रसेन का प्रवेश)

उग्रसेन— **चिरकाल से प्राप्त होने वाला मेरा दुःख श्रीकृष्ण के द्वारा वैसे ही दूर कर दिया गया जैसे भगवान विष्णु ने अपने पराक्रम से इन्द्र, का क्लेश दूर किया था ॥ १६ ॥**

भगवान की कृपा से मैं कठिनाइयों के समुद्र से उबार लिया गया हूँ ।

(नारद का प्रवेश)

नारद—**कंस के विनाश पर भगवान विष्णु की पूजा के लिए देवताओं के**

सगन्धर्वाप्सरोभिश्च देवलोकादिहागतः ॥ १७ ॥

दामोदरः—अये देवर्षिर्नारदः । देवर्षे ! स्वागतम् । इदमर्घ्यं पाद्यं च ।

नारदः—सर्वं गृह्णामि । गन्धर्वाप्सरसो गायन्ति ।

नारायण ! नमस्तेऽस्तु प्रणमन्ति च देवताः ।
अनेनासुरनाशेन मही च परिरक्षिता ॥ १८ ॥

दामोदरः—देवर्षे ! परितुष्टोऽस्मि ! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

आदेशः तस्मात् सगन्धर्वाप्सरोभिः—गन्धर्वैः—देवयोनिविशेषैः अप्सरोभिः = सुराङ्गनाभिः सहितः विष्णोः = व्यापकस्य दामोदरस्य पूजार्थम् = अर्चनार्थं देवलोकात् = अमरपुरात् इह = मथुरायां राजधान्याम् अहं = नारदः आगतः = समागतः ॥ १७ ॥

नारदो दामोदरं स्तुवन्नाह—नारायणेति ।

नारायण ! = हे दामोदर ! ते = तुभ्यम् नमः = प्रणामः अस्तु = भवतु, देवताः = सुराः, च त्वाम् , प्रणमन्ति = प्रणामं कुर्वन्ति अनेन = एतेन असुर-नाशेन असुराणां = दैत्यानां नाशेन = हननेन मही = पृथ्वी परिरक्षिता = अविता च ॥ १८ ॥

आदेश से मैं गन्धर्व और अप्सराओं के सहित देवलोक से यहाँ (मृत्यु लोक में) आया हूँ ॥ १७ ॥

दामोदर—अरे, देवर्षि नारद ! हे देवर्षि ! स्वागत है। यह अर्घ्य और पाद्य (स्वीकार हो) ।

नारद—सब ग्रहण करता हूँ । गन्धर्व और अप्सरायें गाती हैं ।

नारायण ! आपको नमस्कार है। देवतागण आपको नमन करते हैं । इस दैत्य के वध से पृथ्वी पूर्ण रक्षित हो गई ॥ १८ ॥

दामोदर—हे देवर्षि ! मैं सन्तुष्ट हूँ । मैं तुम्हारा और क्या उपकार करूँ ।

नारदः—

प्रहृष्टो यदि मे विष्णुः सफलो मे परिश्रमः ।
गमिष्ये विबुधावास सह सर्वैः सुरोत्तमैः ॥ १९ ॥

दामोदरः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

नारदः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः । (निष्क्रान्तः ।)

(भरतवाक्यम्)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।

नारदः स्वाभीष्टं प्रकटयन्नाह—प्रहृष्ट इति ।

यदि = चेत् मे = मह्यम् विष्णुः = दामोदरः प्रहृष्टः = प्रसन्नः, तर्हि मे = मम परिश्रमः = मर्त्यलोकागमनायासः, सफलः = सार्थकः जात इति शेषः । अतोऽधुना सर्वैः = सकलैः, सुरोत्तमैः = श्रेष्ठैः, सह = साकं, विबुधावासं—विबुधानां = सुराणाम् आवासं = वासस्थानं स्वर्गमित्यर्थः । गमिष्ये = यास्यामि, अपाणिनीयोऽयं गमिधातोरात्मनेपदप्रयोगः ॥ १९ ॥

भरतवाक्यं कविः कथयति—इमामिति ।

नः = अस्माकम् राजसिंहः = नृपश्रेष्ठः, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्—हिमवांश्च विन्ध्यश्च हिमवद्विन्ध्यौ तौ एव कुण्डले यस्याः सा हिमवद्विन्ध्यकुण्डला तां तथोक्ताम् = हिमवद्विन्ध्यकर्णवेष्टनाम् , सागरपर्यन्ताम्—सागरः = समुद्रः पर्यन्तः =

नारद—यदि भगवान विष्णु मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरा परिश्रम (मर्त्यलोक आने में श्रम करना) सफल हो गया, अतः अब देवश्रेष्ठ-इन्द्रादियों के साथ स्वर्ग लोक को जाऊँगा ॥ १९ ॥

दामोदर—आप जायें, दर्शन आपका फिर भी हो ।

नारद—भगवान नारायण जो आज्ञा दे रहे हैं वही होगा, (रङ्गमञ्च से निकल गये)

(भरत का वाक्य)

हम लोगों के श्रेष्ठ राजा हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत जिसके कुण्डल स्वरूप हैं

महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २० ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

पञ्चमोऽङ्कः ।

अवसितं बालचरितम् ॥



सीमाभागः यस्याः सा तां तथोक्ताम् । एकातपत्राङ्काम्—एकं = मुख्यम् आतपात् त्रायत इत्यातपत्रं = छत्रम् एव अङ्कः = चिह्नं यस्याः सा तां तथोक्ताम् , इमाम् = एताम् महीं = पृथ्वीं प्रशास्तु = पालयतु ॥ २० ॥

इति पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः



ऐसी एक छत्र चिह्न वाली, समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वी का पालन करें ॥ २० ॥

(सब लोग रङ्गमञ्च से निकल गये)

पञ्चम अङ्क

समाप्त

